

जैनहितैषी

पूस, माघ सं० २४४७ । जनवरी, फरवरी सन् १९२१

विषय-सूची ।

१—उपासना-तत्त्व ... ६४—७२	१०—कुछ ऐतिहासिक बातें १०२—१०५
२—हथी गुफाका शिलालेख ७३—७६	११—जनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ... १०५—१०६
३—पुरानी बातोंकी खोज ७६—८१	१२—कांग्रेस ... १०६—११०
४—विशेष अनुसन्धान... ८२—८५	१३—तीर्थोंके भगड़ोंको निव- टानेका उपाय ... ११०—१२२
५—सिद्धवर कूट ... ८५—८६	१४—समस्त दिगम्बर जैन पंचोंसे अपील ... ११३—११४
६—प्रतिमाके लेखपर विचार ८६—८८	१५—विविध विषय ... ११५—१२७
७—बहुविवाह विरोधकारहरस्य ८६—९१	१६—सूत कातनेका कर्तव्य १२७—१२८
८—सेठ लालचन्दजी सेठीके भाषणका कुछ सारभाग ९१—९६	
९—कुछ सामयिक बातें... ९६—१०२	

प्रार्थनायें ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकाला जाता है । इसके लिये समय, शक्ति और धनका जो व्यय किया जाता है वह केवल निष्पत्त और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिये; अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें, अवश्य सुना दिया करें ।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक व सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिये सविनय निवेदन है ।

४ लेख भेजनेके लिये सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है ।

सम्पादक ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी ।

नियमावली ।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है ।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे । आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य १) चार आने ।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि

‘बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (महारनपुर)’ के पास भेजना चाहिए । सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

पुष्पलता ।

हिन्दीमें एक नये लेखककी लिखी हुई अपूर्व गल्पें। प्रत्येक गल्प मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भावपूर्ण है । सभी गल्पें स्वतन्त्र हैं और हिन्दीसाहित्यके लिये गौरवकी चीज हैं । जो लोग अनुवाद ग्रन्थोंसे अरुचि रखते हैं उन्हें यह मौलिक गल्पग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए । ७—८ चित्रोंसे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है । हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका यह ४१वाँ ग्रन्थ है । मूल्य १) सजिल्दका १॥)

आनंदकी पगडंडियाँ ।

जेम्स एलेन अँगरेजीके बड़े ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक हैं । उनके ग्रन्थ बड़े ही मार्मिक और शान्तिप्रद गिने जाते हैं । अँगरेजीमें उनका बड़ा मान है । यह ग्रन्थ उन्हींके ‘Byways of Blessedness’ नामक ग्रन्थका अनुवाद है । प्रत्येक विवेकी और विचारशील पुरुषको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए । मूल्य १) सजिल्दका १॥)

सुखदास ।

जार्ज-ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास ‘साइलस मारनर’ का हिन्दी रूपान्तर । इस पुस्तकको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा है । बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है । उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है । मूल्य ॥=)

नये ग्रंथ ।

१ स्वाधीनता-जान स्टुअर्ट मिलकी ‘लिबर्टी’का अनुवाद । यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है । ‘स्वाधीनता’की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी । प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए । मूल्य २) सजिल्दका २॥)

२ ज्ञान और कर्म हिन्दीमें अपूर्व तात्विक ग्रन्थ । कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद । इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोक-सम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की गई है । बहुत बड़ा ग्रन्थ है । मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

३ जान स्टुअर्ट मिल-स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित । अबकी बार यह जुदा छपाया गया है । मूल्य ॥=)

दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास—लेखक, पं० भवानीदयालजी, ३५ चित्रोंसे युक्त । मूल्य ३॥)

रूसकी राज्यक्रान्ति—लेखक, पं० रमाशंकर अवस्थी । २३ चित्रोंसे सुशोभित । मू० २॥)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वेधकृत । मू० ॥=)

मलावरोध-चिकित्सा—,, ,, मू० ॥=)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध-कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय । मूल्य १)

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पद्महर्षा भाग ।
अंक ३-४

जैनहितैषी

जनवरी, फरवरी १९२१
पौष, माघ २४४७

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

उपासना-तत्त्व ।

[उत्तरार्द्ध ।]

मूर्तिपूजा ।

परमात्मा अपनी जीवन्मुक्तावस्था—
अर्थात् अर्हन्त अवस्थामें सदा और सर्वत्र
विद्यमान नहीं रहता, इस कारण परमा-
त्माके स्मरणार्थ और परमात्माके प्रति
आदरसत्काररूप प्रवर्तनेके आलम्बन
स्वरूप उसकी अर्हन्त अवस्थाकी मूर्ति
बनाई जाती है। वह मूर्ति परमात्माके
वीतरागता, शान्तता और ध्यानमुद्रा आदि
गुणोंका प्रतिबिम्ब होती है। उसमें स्थापना
निक्षेपसे परमात्माकी प्रतिष्ठा की जाती
है। उसके पूजनेका भी समस्त वही उद्देश्य
है जो पहले (पूर्वार्धमें) वर्णन किया गया
है; क्योंकि मूर्तिकी पूजासे किसी धातु
पाषाणका पूजना अभिप्रेत (इष्ट) नहीं
है। ऐसा होता तो गृहस्थोंके घरोंमें सैंकड़ों
बाट बटेहड़े आदि चीजें इसी किस्मकी

पड़ी रहती हैं; वे उनसे ही अपना मस्तक
रगड़ा करते और उन्हें प्रणामादिक किया
करते। पर ऐसा नहीं है। मूर्तिके सहारे-
से परमात्माकी ही पूजा, भक्ति, उपासना
और आराधना की जाती है। मूर्तिके
द्वारा मूर्तिमानकी उपासनाका नाम ही
मूर्तिपूजा है। इसी लिए इस मूर्तिपूजाके
देवपूजा, देवाराधना, जिनपूजन, देवार्चन,
भगवत्पर्युपासन, जिनार्चा इत्यादि नाम
कहे जाते हैं और इसी लिए इस पूजनको
साक्षात् जिनदेवके पूजनतुल्य वर्णन किया
है। यथा :—

“भक्त्याऽर्हत्प्रातिमा पूज्या
कृत्रिमाकृत्रिमा सदा ।

यतस्तद्गुणसंकल्या-

त्प्रत्यक्षं पूजितो जिनः ॥

—धर्मसंग्रहश्रावकाचार अ० ९ श्लो० ४२ ।

उर्दूके एक कवि शेख साहबने भी इस
सम्बन्धमें अच्छा कहा है :—

उसमें एक खुदाईका जलवा है वरना ऐ शेष !
सिजदा करेसे फायदा पत्थरके सामने ?

अर्थात्—परमात्माकी उस मूर्तिमें खुदाईका जलवा—परमात्माका प्रकाश और ईश्वरका भाव—मौजूद है जिसकी वजहसे उसे सिजदा—प्रणामादिक—किया जाता है; अन्यथा, पत्थरके सामने सिजदा करनेसे कोई लाभ नहीं था। भावार्थ, परमात्माकी मूर्तिको जो प्रणामादिक किया जाता है वह वास्तवमें परमात्माको—परमात्माके गुणोंको ही—प्रणामादिक करना है, धातु पाषाणको प्रणामादिक करना नहीं है। और इसलिए उसमें लाभ ज़रूर है। जैन-दृष्टिसे खुदाईका वह जलवा परमात्माके परम वीतरागता और शान्ततादि गुणोंका भाव है जो जैनियोंकी मूर्तियोंमें साफ़ तौरसे झलकता और सर्वत्र पाया जाता है। परमात्माके उन गुणोंको लक्ष्य करके ही जैनियोंके यहाँ मूर्तिकी उपासना की जाती है।

परमात्माकी इस परम शान्त और वीतराग मूर्तिके पूजनमें एक बड़ी भारी खूबी और महत्वकी बात यह है कि जो संसारी जीव संसारके मायाजाल और गृहस्थीके प्रपंचमें अधिक फँसे हुए हैं, जिनके चित्त अति चंचल हैं और जिनका आत्मा इतना बलाढ्य नहीं है कि जो केवल शास्त्रोंमें परमात्माका वर्णन सुनकर एकदम बिना किसी नक़शेके परमात्मस्वरूपका नक़शा (चित्र) अपने हृदयपर खींच सकें या परमात्म-स्वरूपका ध्यान कर सकें, वे भी उस मूर्तिके द्वारा परमात्म-स्वरूपका कुछ ध्यान कर सकें, वे भी उस मूर्तिके द्वारा परमात्मस्वरूपका कुछ ध्यान और चिन्तन करनेमें समर्थ हो जाते हैं और उसीसे आगामी दुःखों

तथा पापोंकी निवृत्तिपूर्वक अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्तिमें अग्रसर होते हैं।

जब कोई चित्रकार चित्र खींचनेका अभ्यास करता है तब वह सबसे प्रथम सुगम और सादे चित्रोंपरसे, उनको देख देखकर, अपना चित्र खींचनेका अभ्यास बढ़ाता है; एकदम किसी कठिन, गहन और गम्भीर चित्रको वह नहीं बना सकता। जब उसका अभ्यास बढ़ जाता है, तब कठिन, गहन और रङ्गीन चित्रोंको भी सुन्दरताके साथ बनाने लगता है और छोटे चित्रको बड़ा और बड़ेको छोटा भी करने लगता है। आगे जब अभ्यास करते करते वह चित्रविद्यामें पूरी तौरसे निपुण और निष्णात हो जाता है, तब वह चलती, दौड़ती, भागती वस्तुओंका भी चित्र बड़ी सफ़ाईके साथ बातकी बातमें खींचकर रख देता है और चित्र-नायकको न देखकर, केवल व्यवस्था और हाल ही मालूम करके उसका साक्षात् जीता जागता चित्र भी अंकित कर देता है। इसी प्रकार यह संसारी जीव भी एकदम परमात्मस्वरूपका ध्यान नहीं कर सकता; अर्थात्, परमात्माका फोटो अपने हृदयपर नहीं खींच सकता; वह परमात्माकी परम वीतराग और शान्त मूर्ति परसे ही अपने अभ्यासको बढ़ाता है। मूर्तिके निरन्तर दर्शनादि अभ्याससे जब उस मूर्तिकी वीतराग छुबि और ध्यानमुद्रासे वह परिचित हो जाता है, तब शनैः शनैः एकान्तमें बैठकर उस मूर्तिका फोटो अपने हृदयमें खींचने लगता है और फिर कुछ देरतक उसको स्थिर रखनेके लिये भी समर्थ होने लगता है। ऐसा करने पर उसका मनोबल और आत्मबल बढ़ जाता है और फिर वह इस योग्य हो जाता है कि उस मूर्तिके मूर्तिमान श्रीअर्हन्तदेवका समवसरणादि विभूति सहित साक्षात्

चित्र भी अपने हृदयमें खींचने लगता है। इस प्रकारके ध्यानका नाम 'रूपस्थध्यान' है और यह ध्यान प्रायः मुनि-अवस्था ही में होता है।

आत्मीय बलके इतना उन्नत हो जानेकी अवस्थामें फिर उसको धातुपाषाणकी मूर्तिके पूजादिकी या दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि परमात्माके ध्यानादिके लिए मूर्तिका अवलम्बन लेनेकी ज़रूरत बाकी नहीं रहती; बल्कि वह रूपस्थध्यानके अभ्यासमें परिपक्व होकर और अधिक उन्नति करता है और साक्षात् सिद्धोंका चित्र भी खींचने लगता है जिसको 'रूपातीत ध्यान' कहते हैं। इस प्रकार ध्यानके बलसे वह अपने आत्मासे कर्ममलको छूँटता रहता है और फिर उन्नतिके सोपानपर चढ़ता हुआ शुद्ध ध्यान लगाकर समस्त कर्मोंको क्षय कर देता है और इस प्रकार आत्मत्वको प्राप्त कर लेता है।

अभिप्राय इसका यह है कि, मूर्तिपूजा आत्मदर्शनका प्रथम सोपान है और उसकी आवश्यकता प्रायः प्रथमावस्था (गृहस्थावस्था) हीमें होती है। बल्कि, दूसरे शब्दोंमें, यों कहना चाहिये कि जितना जितना कोई नीचे दर्जमें है, उतना उतना ही ज्यादा उसको मूर्तिपूजाका या मूर्तिका अवलम्बन लेनेकी ज़रूरत है। यही कारण है कि हमारे आचार्योंने गृहस्थोंके लिये इसकी खास ज़रूरत रक्खी है और नित्य पूजन करना गृहस्थका मुख्य धर्म वर्णन किया है*।

यह तो हुई मूर्तिविशेष और जैनियोंके मूर्तिपूजा-विषयक खास सिद्धान्तकी बात। अब यदि आम तौरसे मूर्तिपूजाके सिद्धान्त पर नज़र डाली जाय और मूर्तिके स्वरूप पर सूक्ष्मताके साथ विचार किया जाय और उसके अर्थ-संबन्धमें कुछ गहरा उतरा जाय तो मालूम होगा कि संसारकी कोई भी उपासना बिना मूर्तिके नहीं बन सकती—मूर्तिका अवलम्बन ज़रूर लेना पड़ता है, चाहे वह मूर्ति सूक्ष्म हो या स्थूल। आप किसीकी प्रशंसा नहीं कर सकते जबतक कि मूर्तियोंका सहारा न ले लें। शब्द जिनके द्वारा परमात्माकी या किसीकी भी स्तुति की जाती है, नाम लिया जाता है और गुणानुवाद गाया जाता है वे सब मूर्तिक हैं, मूर्तिकसे उत्पन्न होते हैं, मूर्तिक पदार्थोंसे रोके जाते हैं, फोनोग्राफ़में भरे जाते हैं और इसलिये एक प्रकारकी सूक्ष्म मूर्तियाँ हैं। इसी तरह शब्दोंके द्योतक जो अक्षर हैं वे भी शब्दोंकी नाना प्रकारकी आकृतियाँ हैं—मूर्तियाँ हैं—जिन्हें भिन्न भिन्न देशों अथवा जातियोंने अपने अपने व्यवहारके लिये कल्पित कर रक्खा है। हाथीको संस्कृतमें 'गज', प्राकृतमें 'गय', फ़ारसीमें 'फ़ील', अरबीमें 'पील' और अंग्रेज़ीमें 'एलिफ़ैंट' (Elephant) कहते हैं। अन्यान्य भाषाओंमें उसके दूसरे नाम हैं और एक एक भाषामें कई कई नाम भी हैं—जैसे संस्कृतमें इभ, करी इत्यादिक—और ये सब नाम अनेक लिपियोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे लिखे जाते हैं। इन शब्दरूप मूर्तियोंके कानोंसे टकराने पर या अक्षररूप मूर्तियोंके नेत्रोंके सामने आनेपर जब हाथी नामके एक विशाल जन्तु (जानवर) का बोध होता है तो वह हाथीकी साक्षात् (तदाकार) मूर्तिको देखनेपर उससे कहीं अधिक हो सकता है और

* दाणं पूजा मुखं सावयधम्मो ए सावगो तेण विणा ।

आयज्जकयणं मुखं जइधम्मो तंविणा सोवि ॥

—रणसार ।

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।

दानं चैति गृहस्थानां षट्कर्मणि दिने दिने ॥

—पद्मनंदिपंचविंशतिका ।

होता है। हाथीके नामसे हाथीका सामान्य ज्ञान ही होता है, परन्तु उसकी तदाकार मूर्तिके देखनेसे रङ्गरूप और आकार-प्रकारादिका बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। यही दोनोंमें विशेष है, और इसी विशेषकी वजहसे आजकल विद्वान लोग शिन्धालयोंमें भी चित्रों और मूर्तियोंके द्वारा बालकोंको शिक्षा देना ज़्यादा पसन्द करने लगे हैं।

परमात्माके सम्बन्धमें भी यही सब बातें समझ लेनी चाहिएँ। परमात्माके ईश्वर, परब्रह्म, अज्ञा, खुदा, गौड (God) आदि नामोंके उच्चारण करनेसे अथवा इन नामोंको किसी लिपिविशेषमें लिखकर सामने रखनेसे इन उभय प्रकारकी (शब्द अक्षर रूपवाली) मूर्तियोंके द्वारा यदि परमात्माका बोध होता है तो परमात्माकी तदाकार मूर्ति—उसकी जीवन्मुक्तावस्थाकी आकृति—के देखनेसे वह बोध और भी ज्यादा स्पष्ट होता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसी मूर्तिके द्वारा परमात्माका कुछ बोध ही नहीं होता तो वह शब्दों और अक्षरोंके द्वारा बिलकुल नहीं होता, यह कहना चाहिए; क्योंकि वे भी मूर्तियाँ हैं और अतदाकार मूर्तियाँ हैं। जब तदाकार मूर्तियोंसे ही, जो कि ज्यादा विशद होती हैं, अर्थावबोध नहीं होता तो फिर अतदाकार मूर्तियोंसे वह कैसे हो सकता है? परन्तु यह कहना ठीक नहीं है। इसी तरह यह भी समझना चाहिए कि परमात्माका नाम लेनेसे, शब्दों द्वारा परमात्माकी स्तुति करनेसे—परमात्मनेनमः, ईश्वरायनमः, परब्रह्मणे नमोनमः, ऊँनमः, णमो अरहंताणं, अल्लहम्दोऽल्लिहा* इत्यादि मन्त्रोंके उच्चारण करनेसे—या 'ऊँ' आदि अक्षरोंकी आकृति

सामने रखकर ध्यान करनेसे यदि किसी पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है तो वह तदाकार मूर्ति परसे परमात्माका चिन्तन करनेसे भी जरूर होती है और ज्यादा हो सकती है। ऐसी हालतमें जो लोग परमात्माकी शब्दों और अक्षरोंमें स्थापना करके उन अतदाकार मूर्तियोंके द्वारा उसकी उपासना करते हैं उन्हें परमात्माकी तदाकार मूर्तियाँ बनाकर उपासना करनेवालों पर आक्षेप करनेकी जरूरत नहीं है और न वैसा करनेका कोई हक ही है; क्योंकि वे स्वयं ही मूर्तियों द्वारा-बल्कि अस्पष्ट मूर्तियों द्वारा-परमात्माकी उपासना करते हैं और उससे शुभ फलका होना मानते हैं। वास्तवमें यदि देखा जाय तो कोई भी चिन्तन अथवा ध्यान बिना मूर्तिका सहारा लिये नहीं बन सकता और न निराकारका ध्यान ही हुआ करता है। प्रत्येक ध्यान अथवा चिन्तनके लिए किसी न किसी मूर्ति या आकार विशेषको अपने सामने रखना होता है, चाहे वह नेत्रोंके सामने हो अथवा मानस प्रत्यक्ष। इसी अभिप्रायको हृदयमें रखकर उर्दूके एक कवि पं० मंगतरायजी नानोताने ठीक कहा है—

“अबस यह जैनियों पर

इत्तहामे बुतपरस्ती है ।

बिना तसवीरके हरगिज

तसव्वर हो नहीं सकता ॥”

अर्थात्—जैनियों पर बुतपरस्तीका—मूर्तिपूजा विषयक—जो इलजाम लगाया जाता है—यह कहा जाता है कि वे धातु-पाषाणके पूजनेवाले हैं—वह बिलकुल व्यर्थ और निःसार हैं; क्योंकि कोई भी तसव्वर—कोई भी ध्यान अथवा चिन्तन—बिना तसवीरके, बिना मूर्ति या चित्रका सहारा लिये नहीं बन सकता ।

* यह अरबी भाषाका मुसलमानी मन्त्र है ।

भाबार्थ, ध्यान तथा चिन्तनकी सभीको निरन्तर जंरूरत हुआ करती है, इसलिए सभीको मूर्तियोंका आश्रय लेना पड़ता है और इस दृष्टिसे सभी मूर्तिपूजक हैं। तब, जैनियों पर ही कैसे उसका दोष मढ़ा जा सकता है। उन्हें इस विषयमें, दोष देना बिलकुल फजूल और निर्मूल है। वे अपनी मूर्तियोंके द्वारा परमात्मा हीका ध्यान तथा चिन्तन किया करते हैं।

इसलिए जो लोग मूर्तिपूजाका निषेध करते हैं, मूर्तिको जड़, अचेतन, कृत्रिम बतलाकर और यह कहकर कि वह हमारा कुछ भला नहीं कर सकती, उससे घृणा उत्पन्न कराते हैं, यह सब उनकी बड़ी भूल है। वे खुद बात बातमें मूर्तिका सहारा लिया करते हैं, मूर्तियोंका अद्भुत सत्कार करते हुए देखे जाते हैं,* जड़ पदार्थोंके पीछे भटकते हैं, उनके लिए अनेक प्रकारकी दीनताएँ करते हैं, संसारमें उनका कोई भी काम जड़ पदार्थोंकी सहायताके बिना नहीं होता, वे अपने चारों ओर जड़ तथा कृत्रिम पदार्थोंसे घिरे रहते हैं और उनसे नाना प्रकारके काम निकाला करते हैं, जड़ तथा कृत्रिम गालीको सुनकर उन्हें रोष हो जाता है, और वे यह भी खूब जानते हैं कि इस जगत्का सम्पूर्ण कार्य व्यवहार प्रायः जड़ तथा कृत्रिम मूर्तियोंकी सहायतासे ही चल रहा है। इतने पर भी उनका मूर्तिको जड़ तथा कृत्रिम बतलाकर उससे घृणा उत्पन्न कराना कहाँतक ठीक है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। बास्तवमें, यह सब साम्प्रदायिक मोह, आपसकी खींचातानी तथा पक्षपातका नतीजा है और तात्विक दृष्टिसे उसे कुछ

भी महत्व नहीं दिया जा सकता। अथवा यों कहना चाहिए कि ऐसे लोगोंको मूर्तिका रहस्य मालूम नहीं है; उन्हें यह खबर ही नहीं कि ऐसा कोई भी मनुष्य संसारमें नहीं हो सकता जो मूर्तिका उपासक न हो अथवा परमात्माकी उपासनामें मूर्तिकी सहायता न लेता हो; और इसलिए उन्हें ऊपरके इस सम्पूर्ण कथनसे मूर्तिका रहस्य खूब समझ लेना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि इन स्थूल मूर्तियोंकी पूजाका कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है, इनके द्वारा परमात्माकी ही उपासना की जाती है। ये परमात्माके प्रतिरूप हैं, प्रतिबिम्ब हैं और इसी लिए इन्हें प्रतिमा भी कहते हैं। बुद्धिमान् लोग इनमें परमात्माका दर्शन अथवा इनके सहारेसे अपनी आत्माका अनुभवन किया करते हैं, जैसा कि हमने शुरूमें प्रकट किया है। नीचेके एक पद्यसे भी पाठकोंको ऐसा ही मालूम होगा, जिसमें कवि मैथिलीशरणजीने उन भावोंको चित्रित किया है जो इस विषयमें, एक सामन्तके हृदयमें उस समय उदित हुए थे जब कि उसके देशके किलेकी मूर्ति बनाकर एक राणाके द्वारा, अपनी प्रतिज्ञा* पूरी करनेके अभिप्रायसे तोड़ी जाती थी और जिसे उस सामन्तने अपने उन भावोंके अनुसार तोड़ने नहीं दिया था, बल्कि उसके लिए राणासे युद्ध किया था। वह पद्य इस प्रकार है:—

* प्रतिज्ञा जो सहसा क्रोधके आवेशमें बिना सोचे समझे की गई थी, यह थी कि जबतक उस देशके किलेको नहीं तोड़ डालूँगा तबतक अन्नजल ग्रहण नहीं करूँगा। परन्तु सेना सजाकर वहाँतक पहुँचने आदिके लिए कितने ही दिनोंकी जरूरत थी और उस वक्ततक भूखा नहीं रहा जा सकता था, इसलिए प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए मन्त्रियों द्वारा मूर्तिको तोड़नेकी योजना की गई थी।

* वेदादि शास्त्रोंकी विनय और अपने महात्माओंके चित्रोंकी इज्जत करते हैं। परमात्माओंके नामादिकोंकी बड़ी भक्तिके साथ उच्चारण करते हैं।

तोड़ने दूँ क्या इसे
नकली किला मैं मानके ।
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-
मूर्तिको जड़ जानके ॥
अज्ञ जन उसको भले ही
जड़ कहें अज्ञानसे ।
देखते भगवानको
धीमान उसमें ध्यानसे ॥

—रंगमें भंग ।

इससे पाठक मूर्तिपूजाके भावको और भी स्पष्टताके साथ अनुभव कर सकते हैं, और यह समझ सकते हैं कि इन मूर्तियोंके द्वारा परमात्माका ही पूजना अभीष्ट होता है—धातुपाषाणका नहीं। मूर्तिका विनय-अविनय, वास्तवमें मूर्तिमानका ही विनय-अविनय है। और यही वजह है कि जो कोई किसी महात्मा, परमात्मा, राजा या महाराजाकी लोकमें सम्प्रतिष्ठित मूर्तिका अविनय करता है वह दण्डका पात्र समझा जाता है और उसे, प्रमाणित होनेपर, दण्ड दिया भी जाता है।

यह ठीक है कि, धातुपाषाणकी ये मूर्तियाँ हमें कुछ देती-दिलाती नहीं हैं। और इनसे ऐसी आशा रखना इनके स्वरूपकी अनभिज्ञता प्रकट करता है। तो भी परमात्माकी स्तुति आदिके द्वारा **गुण भावोंको उत्पन्न करके हम जिस प्रकार अपना बहुत कुछ हितसाधन कर लेते हैं उसी प्रकार इन मूर्तियोंकी सहायतासे भी हमारा बहुत कुछ काम निकल जाता है। मूर्तियोंके देखनेसे हमें परमात्माका स्मरण होता है और उससे फिर आत्मसुधारकी ओर हमारी प्रवृत्ति होने लगती है। यह सब कैसे होता है, इसे एक उदाहरणके द्वारा नीचे स्पष्ट किया जाता है—**

कल्पना कीजिये, एक मनुष्य किसी स्थानपर अपनी छतरी भूल आया। वह जिस समय मार्गमें चला आ रहा था, उसे सामनेसे एक दूसरा आदमी आता हुआ नज़र पड़ा जिसके हाथमें छतरी थी। छतरीको देखकर उस मनुष्यको भटसे अपनी छतरीकी याद आ गई और यह मालूम हो गया कि मैं अपनी छतरी अमुक जगह भूल आया हूँ और इसलिए वह तुरन्त उसे लानेके लिए वहाँ चला गया और ले आया। अब यहाँपर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उस मनुष्यको किसने बतलाया कि तू अपनी छतरी अमुक जगह भूल आया है। वह दूसरा आदमी तो कुछ बोला नहीं, और भी किसी तीसरे व्यक्तिने उस मनुष्यके कानमें आकर कुछ कहा नहीं। तब क्या वह जड़ छतरी ही उस मनुष्यसे बोल उठी कि तू अपनी छतरी भूल आया है? परन्तु ऐसा भी कुछ नहीं है। फिर भी यह ज़रूर कहना होगा कि उस मनुष्यको अपनी छतरीके भूलनेकी जो कुछ खबर पड़ी है और वहाँसे लानेमें उसकी जो कुछ प्रवृत्ति हुई है उन सबका निमित्त कारण वह छतरी ही है, उस छतरीसे ही उसे यह सब उपदेश मिला है और ऐसे उपदेशको “नैमित्तिक उपदेश” कहते हैं। यही उपदेश हमें परमात्माकी मूर्तियोंपरसे मिलता है। जैनियोंकी ऐसी मूर्तियाँ, ध्यानमुद्राको लिये हुए, परम वीतराग और शान्त-स्वरूप होती हैं। उन्हें देखनेसे बड़ी शान्ति मिलती है, आत्मस्वरूपकी स्मृति होती है—यह खयाल उत्पन्न होता है कि हे आत्मन्! तेरा स्वरूप यह है, तू इसे भूलकर संसारके मायाजालमें और कषायोंके फन्देमें क्यों फँसा हुआ है—नतीजा जिसका यह होता है कि, (यदि बीचमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती तो)

वह व्यक्ति यमनियमादिके द्वारा अपने आत्मसुधारके मार्गपर लग जाता है। यह दूसरी बात है कि कोई मनुष्य नेत्रहीन (विवेकरहित) हो और उसे मूर्तिरूपी दर्पणमें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वह दिखलाई ही न देता हो; अथवा उसका हृदय दर्पणके समान स्वच्छ न होकर मिट्टीके उस ढेलेके सदृश हो जो प्रतिबिम्ब (उपदेश) को ग्रहण ही नहीं करता और या इतना निर्बल हो कि उसे ग्रहण करके फिर शीघ्र छोड़ देता हो, और इस तरह अपने आत्माके सुधारकी ओर न लग सकता हो; परन्तु इसमें मूर्तिकी कोई दोष नहीं, न इन बातोंसे मूर्तिकी उपयोगिता नष्ट होती है और न उसकी हितोपदेशकतामें ही कोई बाधा आती है। ऐसी परम हितोपदेशक मूर्तियाँ, निःसन्देह, अभिवन्दनीय ही होती हैं। इसीसे एक आचार्य महाशय उनका निम्न-प्रकारसे अभिवादन करते हैं:—

“कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं

परया शांततया भवान्तकानाम् ।

प्रणमामि विशुद्धये जिनानां

प्रतिरूपाण्यभिरूपमूर्तिमंति ॥

—क्रियाकलापः ।

अर्थात्—संसारसे मुक्त श्रीजिनेन्द्र-देवकी उन तदाकार सुन्दर प्रतिमाओंको मैं अपनी आत्मशुद्धिके लिए, प्रणाम करता हूँ जो कि अपनी परम शान्तताके द्वारा संसारी जीवोंको कषायोंकी मुक्तिका उपदेश देती हैं ।

इससे स्पष्ट है कि जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी यह पूजा आत्मविशुद्धिके लिए की जाती है। और जो काम आत्माकी शुद्धिके लिए—आत्माकी विभाव-परिणतिको दूर करके उसे स्वभावमें स्थित करनेके उद्देश्यसे—किया जाता हो वह कितना

अधिक उपयोगी है, इस बातको बतलानेकी जरूरत नहीं, विज्ञ पाठक उसे स्वयं समझ सकते हैं। और ऊपरके इस सम्पूर्ण कथनसे मूर्तिपूजाकी उपयोगिताको बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं।

हाँ, जब मूर्तिपूजा इतनी अधिक उपयोगी चीज़ है तब कभी कभी समाजके साक्षर व्यक्तियोंके द्वारा—ऐसे विद्वानोंके द्वारा भी, जो अनेक बार बड़ी प्रबल युक्तियों और जोरोंके साथ मूर्तिपूजाका मण्डन कर चुके हों—इस समूची उपान्त या इसके किसी एक अंगका विरोध क्यों होने लगता है, यह एक प्रश्न है जो निःसन्देह विचारणीय है। हमारी रायमें इसका सीधा सादा उत्तर यही हो सकता है कि, जब उपासना अपने उद्देश्योंसे गिर जाती है, उसमें भाव नहीं रहता—वह प्रायः प्राणरहित हो जाती है—उसके लिए किरायेके आदमी रखनेकी नौबत आ जाती है, उपासनाके नाम पर समाजमें सूखा क्रियाकांड फैल जाता है, उसकी तहमें अनेक प्रकारके अत्याचारोंकी वृद्धि होने लगती है, उसमें व्यर्थके आडम्बर बढ़ जाते हैं और समाजकी शक्तिका दुरुपयोग होने लगता है, तब वह उपासना तात्विक दृष्टिसे उपयोगी होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टिसे उपयोगी नहीं रहती और इसलिये उसका विरोध प्रारम्भ हो जाता है। विरोध करनेवालोंका मुख्य उद्देश्य, उस समय, प्रायः यही होता है कि, यदि समाजकी इस उपासनामें कुछ भी प्राण अवशिष्ट है तो उसे संजीवित किया जाय, अनेक प्रकारके उपयोगों द्वारा उपासना तत्वकी पुट्टें देकर उसमें अधिक प्राणका संचार किया जाय, और यदि प्राण बिलकुल नहीं रहा हो और न फिरसे उसका संचार हो सकता हो तो उसके साथ उस मृतक

शरीर जैसा व्यवहार किया जाय जो अत्यन्त प्यारा और उपयोगी होते हुए भी, प्राणरहित हो जानेपर घरमें नहीं रक्खा जा सकता। अथवा यों कहिये कि अपने विरोधके द्वारा वे यही सूचित करते हैं कि, उपासनाके शरीरमें अमुक अमुक खराबियाँ उत्पन्न हो गई हैं उन्हें शीघ्र दूर किया जाय, नहीं तो समूचे शरीरके नष्ट हो जानेका भय है; या शरीरका अमुक अंग गल गया है; उसका यदि प्रतिकार नहीं हो सकता तो उसे अलग कर दिया जाय, नहीं तो उसके संसर्गसे दूसरा अंग भी खराब हो जायगा, इत्यादिक। जब समाजकी तरफसे इस विरोधकी कुछ सुनाई नहीं होती, बल्कि उलटी खींचातानी बढ़ जाती है—समाज अपने दोषों पर विचार नहीं करता और न अपनी उपासनामें जीवन संचार करनेका कोई उपाय करता है, बल्कि उसे ज्योंका त्यों अस्वस्थ दशामें ही रखना चाहता है और इस तरहपर उसकी हालत ज्यादा खराब होने लगती है—तब विरोध अपना उग्र रूप धारण कर लेता है और उसके कारण, देयादेयका विचार नष्ट होकर, उपासनाके उन अच्छे अच्छे स्वस्थ अंगोंको भी धक्का पहुँच जाता है जिनको धक्का पहुँचाना विरोधकारियोंको कभी भी इष्ट नहीं होता। और इस तरहपर एक अच्छी और उपयोगी संस्था समाजके दोषसे बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाती है और भावी संतति उसके समुचित लाभोंसे वंचित ही रह जाती है* ।

इसलिये, समाजके व्यक्तियोंका यह खास कर्तव्य है कि वे उपासनाके तत्वको अच्छी तरहसे समझकर अपनी उपा-

सनाके प्रत्येक अंग और ढंगकी जाँच करें, और रुढ़ियोंके मोहको जलाजलि देकर, उन्हें बिलकुल उपासना-तत्वके अनुकूल बना लें। ऐसा हो जानेपर समाजके फिर किसी भी समझदार व्यक्तिको उनकी इस उपासनापर आपत्ति करनेकी कोई वजह नहीं रह सकती।

समाज-हितैषियोंको समाजमें इस उपासना तत्वके फैलाने और इसके अनुकूल समाजकी प्रवृत्ति करानेका खास तौरसे यत्न करना चाहिए। इसीमें समाजका कल्याण है। और इसी हितसाधनाकी दृष्टिसे यह निबन्ध लिखा गया है।

सरसावा । ता० २१—१—१९२१

गहरे अनुसंधान तथा गहरे विवेचन को लिए हुए तत्व और इतिहास विषयके मौलिक लेखोंके तय्यार करनेमें कितना परिश्रम होता है—शक्ति और समयका उसमें कितना व्यय किया जाता है, इस बातको वे ही विद्वान् अनुभव कर सकते हैं जो स्वयं उस प्रकारका काम किया करते हैं अथवा करना जानते हैं। अन्यथा, ऐसे लेखोंकी जिस एक पंक्ति तथा वाक्यको साधारण जनता आधे सेकंडमें पढ़ डालती है उसके प्रस्तुत करनेमें कितने घंटे अथवा, कभी कभी, कितने दिन लगे होंगे, इसे वह नहीं समझ सकती।

—खंड विचार ।

* जैनियोंमें स्थानकवासी और तारनपंथी जैसे सम्प्रदाय ऐसे ही विरोधके परिणाम हैं ।

हाथीगुफाका शिला-लेख ।

जैन सम्राट् खारवेलका इतिहास ।

[लेखक—कुमार देवेन्द्रप्रसादजी, आरा ।]

उड़ीसा प्रान्तके 'खण्डगिरि' पर्वतपर, जो कि कटकके पास भुवनेश्वरसे ४-५ मीलकी दूरी पर है, 'हाथीगुफा' नामका एक प्राचीन सुरम्य स्थान है, जहाँ एक प्राचीन शिला-लेख पुराने गौरवको अपनी गोदमें लिये हुए है। इस शिलालेखका क्षेत्रफल १५'-१" × ५३' (लगभग ८४ वर्ग फीट) है। इसमें १० पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्तिकी अक्षर-संख्या ६० और १०० के बीचमें है। अक्षरोंका आकार ३½ इंचसे लेकर ३ इंचतक पाया जाता है। गुफाके मध्यमें निकले हुए एक सफेद बलुए पत्थरकी चट्टान पर यह लेख खुदा हुआ है। आजकल धरातलसे यह लेख बहुत ऊँचाई पर है। परन्तु किसी समयमें वह ज़रूर ऐसे स्थान पर स्थित होगा, जहाँ मनुष्य सहजहीमें पृथ्वीपर खड़े होकर उसे पढ़ सकते होंगे। कालान्तरमें भूमिके नीचेकी ओर धँस जानेके कारण लेखकी ऊँचाई निःसन्देह अधिक हो गई है। आजकल तो वह इस ऊँचाईकी वजहसे बड़ी कठिनताके साथ पढ़नेमें आता है।

इस लेखकी भाषा अपभ्रंश प्राकृत है। परन्तु यत्र-तत्र अर्ध-मागधी और जैन-प्राकृतके भी कुछ लक्षण पाये जाते हैं। प्राचीन पाली-भाषा और उस लेखकी भाषामें बहुत कुछ सादृश्य है।

लेखकी लिपि उत्तरी-ब्राह्मी है, जिसका समय बूह्लर (Buhler) साहबके मतानुसार ईसासे प्रायः १६० वर्ष पूर्व (160 B. C.) है।

लेखमें चार चिह्न हैं। प्रथम दो चिह्न

तो पहली पंक्तिके प्रारम्भमें एक दूसरेके ऊपर हाशिए पर खुदे हुए हैं, जिनमें पहला चिह्न वर्तमान राज-मुकुटकी भाँति है, और यह जैनियोंके अष्ट-मंगलोंमेंसे बद्धमंगल कहलाता है। इसी चिह्नके नीचे दूसरा प्रसिद्ध 'खस्तिक' नामक चिह्न है। तीसरा चिह्न "नन्दिपद" है। यह प्रथम पंक्तिमें 'खारवेल' के नामके ठीक नीचे खुदा है। और चौथा चिह्न एक वृत्तका-सा चित्र है।

आजकल इस लेखकी दशा, प्रायः दो हजार वर्षकी गर्मी, सर्दी और वर्षाके कारण, विकृत हो गई है। बरौने भी, लेखके ऊपर अपने छत्ते बनाकर, उसकी आकृतिको बिगाड़नेमें कोई कसर नहीं रक्खी। इसीसे उसकी कई पंक्तियाँ तो अभीतक पढ़ी ही नहीं जा सकीं।

यद्यपि सबसे पहले डा० भगवानलाल इन्द्रजीने, सन् १८६६ में इस लेखकी एक प्रतिलिपि तैयार की थी, परन्तु इसका पता १८२५ में ही पुरातत्त्ववेत्ताओंको लग चुका था। और तबसे अबतक इसके विषयमें बराबर विद्वानों द्वारा अनुसन्धान और विवाद जारी रहा। डा० फ़्रीटने डा० भगवानलालके किये हुए उक्त लेखके अर्थकी आलोचना की और उसे कई स्थानों पर ग़लत बताया।

अन्तमें, पाटलिपुत्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल एम० ए० बैरिस्टर-एट-लाकी प्रार्थना पर, श्रीयुत आर० डी० बनर्जी महोदयने उक्त शिलालेखसे डा० भगवानलालकी प्रतिलिपिको मिलाया और उससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि डा० भगवानलालकी प्रतिलिपि पूर्णरूपेण विश्वसनीय नहीं है। परन्तु कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि

इस कार्यको भली भाँति प्रारम्भ करनेका श्रेय डा० भगवानलालको प्राप्त है ।

श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालकी प्रार्थनापर बिहार और उड़ीसाके वर्तमान लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एडवर्ड गेटने श्रीयुत आर० डी० बनर्जी द्वारा उक्त शिला-लेखकी प्रतिलिपि तैयार कराई । बनर्जी साहबने एक प्रतिलिपि अपने लिये भी तैयार की । बादमें जायसवाल महाशय और बनर्जी साहबने स्वतन्त्र रूपसे इस लेखका अर्थ निकालनेका यत्न किया । और अन्तमें दोनों सज्जनोंने अपने अपने कार्योंको मिलाया । यद्यपि बहुत बातोंमें उक्त दोनों महाशय सहमत हो गये, फिर भी कई बातोंमें उनमें परस्पर मत-भेद बना ही रहा, और महाशय जायसवालने दिसम्बर १९१७ के "Journal of Bihar & Orissa Research Society" में अपने विचार प्रकाशित किये ।

केवल प्रतिलिपिसे सन्तोष न करके जायसवालजीने कुछ कालके अनन्तर पुनः श्रीमान् सर एडवर्ड गेट साहबसे उक्त शिला-लेखको स्वयं अध्ययन करनेके लिए सरकारी सहायताकी प्रार्थना की । श्रीमान् लाट साहबने आपकी प्रार्थना स्वीकार की और मि० हरनन्दन पाण्डेय, असिस्टेंट सुपरिण्टेंडेंट पुरातत्त्व-विभाग, पूर्वीय मण्डलको, इस कार्यके लिए उस स्थानपर आवश्यक सहायता देनेकी हिदायत की ।

कोई ७ दिनके कठिन परिश्रमके अनन्तर महाशय जायसवालजीने मिस्टर पाण्डेयजीकी सहायतासे उक्त शिला-लेखको फिरसे पढ़ा ; जिसका नतीजा यह हुआ कि अब बहुत कम स्थानोंपर यह लेख अस्पष्ट रह गया है, और पहलेसे बहुत सी बातें अब इसके द्वारा अधिक ज्ञात हुई हैं ।

श्रीयुत के. पी. जायसवालजी इस लेखकी विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि—

“ईसवी सनसे पूर्वकी कुछ शताब्दियोंका इतिहास जाननेके लिये यह शिलालेख अत्यन्त उपयोगी है । अशोकके पश्चात् यह दूसरा शिलालेख है । पहला लेख वेदीश्रीका नानाघाटवाला लेख है । परन्तु मौर्य-कालसे पूर्व-समयका निर्णय करने और जैन-धर्मका इतिहास जाननेकी दृष्टिसे यह शिलालेख उन सम्पूर्ण शिलालेखोंसे सबसे अधिक महत्वका है जो अबतक देशमें पाये गये हैं । इस लेखसे यह भी प्रमाणित होता है कि जैन-धर्मका प्रचार उड़ीसामें भी हुआ और सम्भवतः वीर सम्बत् १०० के भीतर वह वहाँ राज-धर्म बन गया था । इससे बिहार और उड़ीसाके एक ही देशमें परिगणित होनेका ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है । इस देशके सामाजिक-इतिहासकी एक अत्यन्त आवश्यक बातका भी पता इस लेखसे चलता है । वह यह है कि ईसासे लगभग १७२ वर्ष पूर्व प्राचीन उड़ीसाकी जनसंख्या ३५ लाख थी । इससे कौटिल्यके अर्थशास्त्र और मेगास्थनीज़के ग्रन्थमें वर्णित इस बातकी केवल पुष्टि ही नहीं होती कि हमारे पूर्वज मनुष्यगणना करते थे, बल्कि इससे प्राचीन कालमें उत्तर-भारतकी समस्त जनसंख्याका भी पता चल सकता है । इस शिलालेखसे पुराणोंमें वर्णित, अंध-वंशीय तृतीय नृपति, सातकर्ण प्रथमके भी इतिहास पर प्रकाश पड़ता है । और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसी शिलालेखमें सबसे पहले मुरीय-नृपति (चन्द्रगुप्त) के सम्बत्का उल्लेख है ।”

इस शिलालेख परसे सम्राट् खार-

वेलका जो जीवनवृत्तान्त* या इतिहास मालूम होता है वह इस प्रकार है:—

नाम और उपाधि ।

सम्राट्का नाम 'खारवेल' (सं० खार-वेल) था । शिलालेखमें आपको 'महाराज' लिखा है और साथ ही आपकी दो उपाधियोंका भी उल्लेख किया है; एक 'पेर' (पेल) और दूसरी 'महामेघवाहन' । पेर उपाधिको जायसवाल महाशय 'आर्य्य' शब्दसे सम्बद्ध बतलाते हैं ।

वंश ।

शिलालेखकी प्रथम पंक्तिसे यह ज्ञात होता है कि महाराज खारवेल 'चेतराज' के वंशमें उत्पन्न हुए थे । और अन्तिम पंक्तिमें उन्हें राजर्षि वंश और कुलमें उत्पन्न हुआ प्रकट किया है । इससे यह पता चलता है कि खारवेलका वंश आर्य्यावर्तके किसी प्राचीन राजवंशकी शाखा होगा । सम्भव है 'पेर' शब्दका प्राचीन भारतवर्षके प्रसिद्ध राजवंश 'पेल' से सम्बन्ध हो, ऐसा श्रीयुत जायसवालजीका मत है ।

शिलालेखकी तीसरी पंक्तिमें खारवेलका तृतीय कलिंग-राजवंशमें होना बतलाया गया है । हिन्दू पुराणोंके अनुसार महाभारत-युद्धके समयसे १३०० वर्ष उपरान्ततक कलिंग-वंश चला आया था, और महापद्मके कुछ पूर्व उसका अन्त हो गया था । नन्दवर्द्धनने कलिंगको जीत लिया था । मौर्य-राजाओंके पूर्व कलिंग फिर स्वतन्त्र हो गया था और अशोकने उसे पुनः अपने अधीन कर

लिया था । यह कलिंगका द्वितीय राजवंश होगा । मौर्य-शासनके अन्तिम समयमें चेतवंशी राजाओंके अधीन कलिंग फिर स्वतन्त्र हो गया होगा । इस प्रकार इसी तृतीय कलिंग-राजवंशमें खारवेल हुए, ऐसा मालूम होता है ।

केतुभद्र ।

शिलालेखकी ११वीं पंक्तिमें 'केतुभद्र' का उल्लेख है, जो १३०० वर्ष पूर्व विद्यमान था । वह इसी वंशका राजा था । इस प्रकार ईसाके (१३०० + १६०) १४६० वर्ष पूर्व केतुभद्र रहा होगा । हिन्दू पुराणोंके अनुसार महाभारत युद्ध ईसाके १४२४ वर्ष पूर्व हुआ है । महाभारतके भीष्मपर्वमें कलिंग-सेनाके सेनानी 'केतुभद्र' का वर्णन है; जो भीमके साथ युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुआ था । सम्भव है, इसी केतुभद्रके उपलक्ष्यमें खारवेलने, पंक्ति ११ में उल्लिखित, उत्सव किया हो ।

यौवराज्य और राज्याभिषेक ।

पन्द्रह वर्ष कुमार-क्रीडामें बितानेकर तथा अनेक विद्याओंमें नैपुण्य प्राप्त करके श्रीखारवेल १६वें वर्षमें युवराज पदपर विराजमान हुए और उन्होंने नौ वर्षतक युवराजके तौरपर शासन किया । ऐसा लेखकी दूसरी पंक्तिसे मालूम होता है । साथ ही, यह भी जान पड़ता है कि सिंहासन कुछ पहले हीसे खाली था और २४ वर्षकी अवस्था पूर्ण होनेपर राज्याभिषेकका समय नियत हो चुका था । शायद उस समय २४-२५ वर्षसे पहले राज्याभिषेक होनेकी प्रथा न रही हो, और शायद यही वजह हो कि अशोक भी राज्याधिकारी होनेके ३, ४ वर्ष बाद अभिषिक्त हुए थे ।

खारवेल यद्यपि जैन थे, परन्तु वैदिक विधानोंके अनुसार उनका महाराज्या-

* इस जीवन-वृत्तान्तके लिखनेमें हमें सबसे अधिक सहायता श्रीयुत के० पी० जायसवालके तद्विषयक निबन्धसे मिली है । अतः हम इसके लिए उनके खास तौरसे आभारी हैं ।

भिषेक हुआ था । इससे यह प्रकट होता है कि जैनमतके कारण प्राचीन प्रथाओंमें बाधा नहीं पड़ने पाती थी ।

इस सम्बन्धमें एक बात और भी उल्लेखनीय है । वह यह कि, शिलालेखकी तीसरी पंक्तिमें लिखा है कि “एक पुरुष-युगके लिए महाराज्याभिषेक पाया ।” प्राचीन कालमें तीन प्रकारके अभिषेक होते थे । पुरुषयुगके लिए—अर्थात् निर्वाचित राजाके जीवन-कालके लिए—द्वि-पुरुष युगके लिए और परम्पराके लिए ।

राजमहिषी ।

सातवीं पंक्तिसे खारवेलकी राज-महिषीका नाम ‘धिसि’ या ‘धृष्टि’ मिलता है जो वज्रकुलकी थी ।

कलिंगकी जनता ।

पहले लोगोंका यह मत था कि प्राचीन भारतमें मनुष्यगणनाकी प्रथा नहीं थी । परन्तु अब कौटिल्यके अर्थ-शास्त्र और मेगास्थनीज़के लेखोंसे यह बात मली भाँति सिद्ध हो गई है कि मौर्य-कालमें राजनैतिक और आर्थिक प्रयोजनोंसे मनुष्यगणना की जाती थी । इस शिलालेखसे भी उक्त बातका समर्थन होता है । इसकी चौथी पंक्तिके अनुसार कलिंग राज्यकी जनसंख्या उस समय ३५ लाख थी । उड़ीसाकी वर्तमान जनसंख्या ५० लाख है ।

खारवेलकी राजधानी ।

शिलालेखमें कई स्थानोंपर कलिंगकी राजधानीका वर्णन है । उसके लिए कहीं “कलिंग नगरी” और कहीं “नगरी” शब्दका प्रयोग किया गया है, परन्तु स्पष्ट नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता । ऐसा जान पड़ता है कि शिलालेखके समीप ही कहीं वह स्थित होगी । प्राची

नदीके तटपर खारवेलने एक भवन बनवाया था । हाथीगुफा और धौलीसे कुछ दूरपर वर्तमान भुवनेश्वरके समीप, इस नामकी एक छोटीसी नदी है । धौलीके समीप सम्राट् अशोकका तोशलीवाला शिलालेख है ।

अशोकके अधीन कलिंगकी राजधानी तोशली थी । और खारवेलके शिलालेखसे यह प्रकट है कि उसने प्राचीन राजधानीका परिवर्तन नहीं किया । इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि वर्तमान धौली ही खारवेलकी राजधानी थी, और उस समय उसका नाम ‘तोशली’ था ।

खारवेल दिग्विजय ।

सातकर्णिक—अपने राज्यके दूसरे वर्ष हीसे सम्राट् खारवेलने भारत-दिग्विजय करना प्रारम्भ कर दिया था । शिलालेखकी चौथी पंक्तिसे मालूम होता है कि सम्राट्ने सातकर्णिकी कुछ भी चिन्ता न करके पश्चिम देशको एक सेना भेजी । ईसाके २१० या २१३ वर्ष पूर्व प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठन)में ब्राह्मण-वंशीय राजाओंका राज्य स्थापित हुआ था । उसी वंशके तीसरे नृपति सातकर्णिके प्रथमसे सम्राट् खारवेलकी मुठभेड़ हुई होगी ।

मूषिक ।

तदनन्तर सम्राट्ने मूषिक नगरपर आक्रमण किया । महाभारत (भीष्मपर्व अध्याय ६) में मूषिकोंका वनवासियोंके साथ वर्णन है । नाट्यशास्त्रके अनुसार कलिंगके निवासियोंके तीन भेद थे—तोशल (तोशलीके निवासी), कोशल (दक्षिण-कोशलके निवासी) और मोशल (मूषिकके निवासी) । विष्णुपुराणमें मूषिक और खीराज्यको एक ही राज्यमें सम्मिलित किया गया है । कामसूत्रके

अनुसार खीराज्य पश्चिममें विन्ध्याचलके समीप एक देश था। इन सब प्रमाणोंपर विचार करनेसे यह ज्ञात होता है कि मूषिक देश पैठान और गोंडवानाके मध्यमें, २०° और २२° अक्षांशोंके अन्तर्गत होगा। उसके बाद कोशल देश था।

राष्ट्रिक और भोजक ।

सातकर्णि और मूषिकोंपर विजय प्राप्त करके खारवेल पश्चिममें अपनी सेना ले गया। राष्ट्रिकों और भोजकोंने सम्राट्के चरणोंकी वन्दना की—अर्थात् उसको स्वामी स्वीकार किया। राष्ट्रिक और भोजक वर्तमान महाराष्ट्र और बरार प्रान्तोंमें रहते थे। अशोकके शिलालेखोंमें भी उनका उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मणके अनुसार भोजकोंमें कोई राजा नहीं होता था। खारवेलने अपने राज्यके चौथे वर्षमें, उनके नेताओंके छत्रादिकोंको नष्ट कर दिया और उसे इनसे बहुतसी सम्पत्तिकी प्राप्ति हुई।

मगधपर आक्रमण ।

आठवें वर्ष खारवेलने बड़ी दीवारवाले गोरथगिरिपर आक्रमण किया और राजगृहको घेर लिया। वहाँका राजा मथुराको चला गया। सम्भव है, उसने कुछ कारणोंसे मथुराको अपना सैनिक केन्द्र बनाना उचित समझा हो। पंक्ति ८ का शेष भाग अभीतक पढ़ा नहीं जा सका। इसलिए राजगृहके इस आक्रमणका परिणाम ज्ञात नहीं होता। सम्भव है, राजगृहके राजाके मथुरा चले जानेके कारण खारवेलको उससे युद्ध करनेका अनुकूल अवसर प्राप्त न होनेसे उसने अपनी सेना वहाँसे हटा ली हो, और शायद समुचित सेना प्रस्तुत करनेके हेतु वह फिर अपनी राजधानीको लौट आया हो। कुछ भी हो, ६वें वर्षमें कोई

युद्धचर्चा नहीं सुन पड़ती। दसवें वर्षमें सम्राट्ने देश जीतनेकी इच्छासे उत्तर-भारतको प्रस्थान किया। परन्तु ग्यारहवें वर्षमें फिर किसी युद्धका उल्लेख नहीं है। बारहवें वर्षमें उसने उत्तरापथके राजाओंमें त्रास उत्पन्न किया। और उसके बाद उसी वर्ष वह मगधके निवासियोंमें भय उत्पन्न करता हुआ, अपनी सेनाको गङ्गा पार ले गया। मगधके राजा 'वृहस्पतिमित्र' पर, जिसको पुष्यमित्र भी कहते हैं, विजय प्राप्त करके खारवेलने 'कलिग-जिन' की मूर्तिको उससे छीन लिया और उसे अपने देशमें ले आया। इस मूर्तिको नन्दराज कलिगसे ले गया था।

मगधका यह आक्रमण खास तौरसे उल्लेखनीय है। उत्तरापथ (सीमान्त प्रदेश) में विजय प्राप्त करनेके अनन्तर उसने मगध राज्यमें प्रवेश किया। इससे यह पता चलता है कि मगध राज्यका विस्तार उस समय सीमान्त प्रदेशोंतक था। पातञ्जलिके अनुसार शक और यवन आर्यावर्तसे बाहर निकाल दिये गये थे। पुष्यमित्रके अधीन शुंग राज्यकी सीमा पञ्जाबसे लेकर कमसे कम अंग (आसाम) तक रही होगी, क्योंकि शिलालेखमें अंगकी अमूल्य वस्तुओंके लानेकी भी बात है। खारवेलने उत्तर-पश्चिमकी ओरसे गङ्गा पार करके राजगृहपर आक्रमण किया होगा, और ऐसा करनेमें उसे दो सुविधाएँ थीं। एक तो सोनकी और पाटलिपुत्र बहुत सुरक्षित है; दूसरे उस ओर दलदल भी पड़ते हैं, जिनमें हाथियोंका ले जाना कठिन हो जाता।

मगधके इस आक्रमणमें दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि, एक ही वर्षके भीतर खारवेलने कलिग नगरीसे प्रस्थान करके सीमान्त प्रदेशोंको

जीता तथा वहाँसे अपनी सेना मगध देशमें लाकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया और शुंगराज पुष्यमित्रको पराजित किया, और फिर अपनी नगरीको लौटकर सुन्दर शिखर निर्माण कराये। ऐसे शीघ्रगामी विजयी सेनापतिकी तुलना नेपोलियन बोनापार्टसे की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि पुष्यमित्र उस समय उत्तर-भारतका सम्राट् था और उसका विशाल साम्राज्य था। ऐसे प्रसिद्ध सम्राट्को पराजित करनेवाले विजेताकी महिमा कितनी अधिक होगी। इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि मगधसे कलिंगकी महत्ता बढ़ गई।

पाण्ड्यराज ।

इसी बारहवें वर्षमें सुदूर-दक्षिणके पाण्ड्यराजने भी हाथी, घोड़े, मणि, मोती आदिकी भेंट खारवेलकी सेवामें भेजी।

इस प्रकार सम्राट् खारवेलके अधीन वा उसकी प्रभुताको स्वीकार करनेवाले साम्राज्यकी सीमा पञ्जाबसे लेकर आसामतक और विन्ध्याचलसे लेकर सुदूर पाण्ड्य देशतक थी।

खारवेलका शासन ।

१६ वर्ष हीकी अवस्थामें राज्य-पद प्राप्त करके उसने शास्त्रानुसार अपनी प्रजाको प्रसन्न रक्खा। शिलालेखमें उसके किसी प्रकारके अन्यायका वर्णन नहीं पाया जाता। उसके समयमें कलिंगका प्रताप समस्त भारतवर्षमें व्याप्त हो गया था।

खारवेलने राजधानीको सुन्दर भवनोंसे सुशोभित किया, विशाल राजप्रासाद बनवाये, प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया, प्राचीन नन्दराजकी बनवाई नहरको कलिंग नगरी तक पहुँचाया, और कब्रारों तथा तालाबोंका पुनः संस्कार

कराया, बाग लगवाये और नगरकी चहारदीवारीकी मरम्मत कराई।

खारवेलने राजसूय यज्ञ करके समस्त करोंको क्षमा कर दिया, और पौर तथा जानपद नाम्नी संस्थाओंको अनेक अधिकार दिये। राजधानीकी संस्थाको 'पौर' और, ग्रामोंकी संस्थाको 'जानपद' कहते थे। वर्तमान समयमें हम इन्हें म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके नामसे पुकार सकते हैं।

शिलालेखसे यह साफ प्रकट है कि युद्धके साथ साथ कलिंग-निवासियोंने शान्तिके सुखका भी पूर्ण भोग किया। संगीत और वाद्यके द्वारा सार्वजनिक मनोरञ्जनका भी प्रबन्ध था। इसके अतिरिक्त युद्धोंमें प्राप्त धनसे कलिंग-राज्य सम्पत्तिशाली भी खूब रहा होगा। इस प्रकार खारवेलके साम्राज्यमें सुख, सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्यकी प्रचुर सामग्री उपस्थित थी।

सामाजिक-दशा ।

इस शिलालेखमें उस समयके भारत-वर्षकी सामाजिक दशाका सजीव चित्र विद्यमान है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस समय कलिंगकी गणना भारत-वर्षमें नहीं की जाती थी। लगभग दो शताब्दियोंके अनन्तर भारतवर्षकी सीमा समस्त उत्तर और दक्षिण देशोंतक मानी जाने लगी।

जैन धर्म ।

खारवेल जैनधर्मावलम्बी था, परन्तु वैदिक विधानानुसार उसका महाराज्याभिषेक हुआ और उसने राजसूय-यज्ञ भी किया। ब्रह्मणोंकी जातीय संस्थाओंको उसने भूमि प्रदान की। इससे यह भली भाँति स्पष्ट है कि जैनधर्मानुयायी होते हुए प्राचीन राष्ट्रीय नियमोंका पालन

करनेके लिये उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी । बौद्ध धर्मके अनुसार यह कदापि नहीं हो सकता था । पंक्ति नं० १७ में बतलाया गया है कि खारवेल सभी मतोंका मान करता है । यह उल्लेख इस महान् सम्राट् की धार्मिक सहिष्णुताका अच्छा द्योतक है । सुख, सम्पत्ति और ऐश्वर्यके साथ साथ खारवेलके राज्यमें धार्मिक स्वतन्त्रता भी होनेके कारण, प्रजाको उस समय सोनेमें सुगन्धि मिलती थी ।

जब वह समस्त जैनेतर धर्मोंकी प्रतिष्ठा करता था, तब जैन धर्मकी उन्नति करना तो उसका परम धर्म ही था । शिलालेखके अनुसार उसने पाप और क्षेमकी क्रियाओंमें प्रवृत्त पापज्ञापकोंको भी राज्यकी ओरसे सहायता प्रदान की थी, और सुयोग्य भ्रमणोंके निमित्त एक संघायन भी निर्माण कराया था ।

मगध पर आक्रमण करके वह वहाँ से कलिंग-जिनकी मूर्तिको भी लौटा लाया था जिसको नन्दराज कलिंगसे ले गया था । यह भी जैनधर्मकी सेवा थी ।

शिलालेख खारवेलके शासनके तेरहवें वर्ष पर समाप्त हो जाता है । उस समय खारवेलकी अवस्था ३७ वर्षकी थी । परन्तु खर्गापुरी (या मञ्चपुरी) के शिलालेखमें यह लिखा है कि इस लेखको वर्तमान सम्राट् खारवेलकी पाटमहिषी, (सम्भवतः धृष्टी) ने खुदवाया है । इस लेखकी भाषा, खंडगिरिवाले शिलालेखकी भाषासे, ३०-४० वर्ष बादकी मालूम होती है । इसलिये सम्भवतः कमसे कम ६७ वर्षकी आयुतक खारवेल ने अवश्य राज्य किया होगा । और इस प्रकार ईसाके १३० वर्ष पूर्वतक अवश्य इस महान् सम्राट्का राज्यशासन रहा होगा । (अपूर्ण)

पुरानी बातोंकी खोज ।

[गतांकसे आगे]

४-नेमिनिर्वाणके अन्तिम पद्य ।

जैनसिद्धान्तभवन, आरामें, संवत् १५२७ पौष कृष्ण अष्टमी शुक्रवारकी लिखी हुई, 'नेमिनिर्वाण' काव्यकी एक प्रति है, जिसके अन्तमें निम्नलिखित दो पद्य पाये जाते हैं:—

भिन्नो विन्ध्यनगे वणिग्वर

गुणश्रेभ्यादिकेतुः सुरः ।

चिन्तायाति खगे महेन्द्र

सुमना भूपोपरादिर्जितः ॥

सोऽव्यादच्युतनायको

नरपतिः स्वादि प्रतिष्ठोऽप्यह-

मिन्द्रो यश्चजयन्तके सुर-

वरो नेमीश्वरः पातुवः ॥८६॥

अहिच्छत्रपुरोत्पन्न

प्राग्वाटकुलशालिनः ।

छाहडस्य सुतश्चक्रे

प्रबंधं वाग्भटः कविः ॥८७॥

ये दोनों पद्य बम्बईके निर्णयसागर प्रेस द्वारा सन् १८६६ की छपी हुई प्रतियोंमें नहीं हैं । जान पड़ता है, जिस हस्तलिखित प्रतिपरसे उक्त प्रेसने यह ग्रन्थ छापा है, उसमें यह दोनों पद्य नहीं होंगे । और भी ऐसी अनेक प्रतियाँ हैं जिनमें ये पद्य नहीं पाये जाते और यह सब लेखकोंकी कृपाका फल है । वास्तवमें, ये दोनों पद्य नेमिनिर्वाणके अन्तिम पद्य मालूम होते हैं । इन पद्योंमेंसे पहला पद्य नेमीश्वरके पूर्वभवोंका स्मरण करते हुए ग्रन्थके उपसंहार और अन्तमङ्गलका सूचक है; और दूसरे पद्यमें ग्रन्थकर्ता कवि वाग्भटने अपना संक्षिप्त परिचय

दिया है, जिससे मालूम होता है कि कवि-की जन्मभूमि 'अहिच्छत्रपुर' * थी, वे 'प्राग्वाट' वंशमें उत्पन्न हुए थे और उनके पिताका नाम 'छाहड' था। नम्बर ८७ वाला दूसरा पद्य पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्रीके भण्डारकी एक प्रतिमें भी पाया जाता है; परन्तु उसका पाठ, जैसा कि वह एक बार जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ था, † कुछ स्पष्ट और अशुद्ध जान पड़ता है। उसमें 'प्राग्वाटकुल' के स्थानमें 'भटकुल' ऐसा कुछ अस्पष्ट और अपूर्ण पाठ है। साथ ही 'छाहडस्य' के स्थानमें 'छादस्य' गुलत लिखा है और उससे तीसरे चरणमें एक अक्षर भी कम हो गया है। इसी पाठके आधार पर श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीने उस समय ग्रन्थकर्त्ताको 'छाद' का पुत्र प्रकट किया था, जो कि अब, शुद्ध पाठके सामने आने-पर साफ़ तौरसे 'छाहड' का पुत्र मालूम होता है। इस ग्रन्थकर्त्ताका विशेष इतिहास मालूम होनेकी ज़रूरत है। साथ ही, कुछ प्रबल प्रमाणों द्वारा यह भी निश्चित होनेकी ज़रूरत है कि 'वाग्भटालङ्कार' और इस ग्रन्थके कर्त्ता दोनों एक ही व्यक्ति थे या भिन्न भिन्न और किस सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखते थे। अभीतक इस विषयमें, काव्यमालाके सम्पादक आदि द्वारा जो कुछ लिखा गया है वह पर्याप्त नहीं है।

५-तत्त्वार्थ सूत्रकी उत्पत्ति ।

उमास्वातिके तत्त्वार्थ सूत्र पर 'तत्त्व-रत्नप्रदीपिका' नामकी एक कनडी टीका बालचन्द्र मुनिकी बनाई हुई है, जिसे 'तत्त्वार्थतात्पर्यवृत्ति' भी कहते हैं। इस

टीका की * प्रस्तावनामें तत्त्वार्थ सूत्रकी उत्पत्ति जिस प्रकारसे बतलाई है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—“सौराष्ट्र देशके मध्य ऊर्जयन्तगिरिके निकट गिरि-नगर (जूनागढ़ ?) नामके पत्तनमें आसन्न-भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न, श्वेताम्बर-भक्त ऐसा 'सिद्धय्य' नामका एक विद्वान् श्वेताम्बरमतके अनुकूल सकल शास्त्रका जाननेवाला था। उसने 'दर्शन-ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पाटिये पर लिख छोड़ा। एक समय चर्यार्थ श्रीगृध्रपिच्छा-चार्य 'उमास्वाति' नामके धारक मुनिवर वहाँ पर आये और उन्होंने आहार लेनेके पश्चात् उस पाटियेको देखकर उसमें उक्त सूत्रके पहले 'सम्यक्' शब्द जोड़ दिया। जब वह (सिद्धय्य नामका) विद्वान् बाहरसे अपने घर आया और उसने पाटिये पर 'सम्यक्' शब्द लगा देखा तो उसने प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किस महानुभावने यह शब्द लिखा है। माताने उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्था-चार्यने यह बनाया है। इस पर वह गिरि और अरण्यको ढूँढ़ता हुआ उनके आश्रममें पहुँचा और वहाँ भक्तिभावसे नम्रीभूत होकर उक्त मुनि महाराजसे पूछने लगा कि, आत्माका हित क्या है (यह प्रश्न और इसके बादका उत्तर प्रत्युत्तर प्रायः सब वही है जो 'सर्वार्थसिद्धि' की प्रस्तावनामें श्रीपूज्यपादाचार्यने दिया है।) मुनिराजने कहा 'मोक्ष' है। इस पर मोक्षका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूपमें ही इस ग्रन्थका अवतार हुआ है।

इस तरह एक श्वेताम्बर विद्वान्के प्रश्नपर एक दिग्गम्बर आचार्य द्वारा इस

* देखो जैनहितैषी भाग ११ अंक ७—८ ।

† आधुनिक रामनगर जो बरेलीसे प्रायः २० मीलके फासलेपर है।

† यह टीका आराके जैनसिद्धान्तभवनमें देवनागरी अक्षरोंमें मौजूद है।

तत्त्वार्थसूत्रकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा उक्त कथानकसे पाया जाता है। हम नहीं कह सकते कि उत्पत्तिकी यह कथा कहाँ तक ठीक है। पर इतना ज़रूर है कि यह कथा सात सौ वर्षसे भी अधिक पुरानी है; क्योंकि उक्त टीकाके कर्ता बालचंद्रमुनि विक्रमकी १३वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें हो गये हैं। उनके गुरु 'नयकीर्ति' का देहान्त शक सं० १०६६ (वि० सं० १२३५) में हुआ था* ।

मालूम नहीं कि इस कनड़ी टीकासे पहलेके और किस ग्रंथमें यह कथा पाई जाती है। तत्त्वार्थसूत्रकी जिनती टीकाएँ इस समय उपलब्ध हैं उनमें सबसे पुरानी टीका 'सर्वार्थसिद्धि' है। परन्तु उसमें यह कथा नहीं है। उसकी प्रस्तावनासे सिर्फ इतना ही पाया जाता है कि किसी विद्वानके प्रश्नपर इस मूल ग्रन्थ (तत्त्वार्थ-सूत्र) का अवतार हुआ है। वह विद्वान कौन था, किस सम्प्रदायका था, कहाँका रहनेवाला था और उसे किस प्रकारसे ग्रन्थकर्ता आचार्य महोदयका परिचय तथा समागम प्राप्त हुआ था, इन सब बातोंके विषयमें उक्त टीका मौन है। यथा-

कश्चिद्भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान्
स्वहितमुपल्लिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्य-
सत्वश्रामास्पदे क्वचिदाश्रमपदे मुनि-
परिषण्मध्ये सन्निषण्णं मूर्तमिव मोक्षमार्ग-
मवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागम-
कुशलं परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं
निर्भन्थाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परि-
पृच्छतिस्म, भगवन् किं खलु आत्मनोहितं
स्यादिति । स आह मोक्ष इति । स एव
पुनः प्रत्याह किं स्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य
प्राप्त्युपाय इति । आचार्य आह.....।”

* देखो श्रवण वेत्कोलस्थ शिलाखेख नं० ४२ ।

संभव है कि इस मूलको* लेकर ही किसी दन्तकथाके आधारपर उक्त कथाकी रचना की गई हो; क्योंकि यहाँ प्रश्नकर्ता और आचार्य महोदयके जो विशेषण दिये गये हैं प्रायः वे सब कनड़ी टीकामें भी पाये जाते हैं। साथ ही, प्रश्नोत्तरका ढंग भी दोनोंका एक ही सा है। और यह भी संभव है कि जो बात सर्वार्थसिद्धिमें संकेत रूपसे दी गई है वह बालचन्द्र मुनिको गुरु परम्परासे कुछ विस्तारके साथ मालूम हो और उन्होंने उसे लिपिबद्ध कर दिया हो; अथवा किसी दूसरे ही ग्रन्थसे उन्हें यह सब विशेष हाल मालूम हुआ हो। कुछ हो, बात नई है जो अभीतक हमारे तथा बहुतोंके जाननेमें नहीं आई थी और इससे तत्त्वार्थसूत्रका संबन्ध दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके साथ स्थापित होता है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि उस समय दोनों सम्प्रदायोंमें आजकल जैसी खींचातानी नहीं थी और न एक दूसरेको घृणाकी दृष्टिसे देखता था। (क्रमशः)

* श्रुतसागरी टीकामें भी इसी मूलका प्रायः अनुसरण किया गया है और इसे सामने रखकर ही ग्रन्थकी उत्थानिका लिखी गई है। साथ ही, इतना विशेष है कि उसमें प्रश्नकर्ता विद्वानका नाम 'द्वैयाक' अधिक दिया है। कनड़ी टीकावाली और बातें कुछ नहीं दीं। यह टीका कनड़ी टीकासे कई सौ वर्ष बादकी बनी हुई है।

विशेष अनुसन्धान ।

(१)

‘दुष्प्राप्य और अलभ्य जैन ग्रन्थ’ नामके शीर्षकके नीचे हमने अबतक जितने ग्रन्थोंका परिचय दिया है उनमेंसे जो ग्रन्थ आराके जैनसिद्धान्तभवनकी सूचीसे सम्बन्ध रखते हैं उनके विषयमें अनुसन्धान करनेपर जो कुछ विशेष हाल मालूम हुआ है वह पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे प्रकट किया जाता है:—

अमृताशीति ।

यह ग्रन्थ संस्कृत है, प्रायः उपदेशी है, ध्यानका भी इसमें कुछ कथन है, योगीन्द्रदेव आचार्यका बनाया हुआ है और जैनसिद्धान्तभवनमें मौजूद है। सूचीमें ‘अमृतीशिनी’ ऐसा नाम गलत छपा है। इसकी पद्य-संख्या ८२ है। कनडीसे देवनागरी अक्षरोंमें अब इसकी कापी भी हो गई है और माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें इसके छपाये जानेका विचार है। इसमें कई पद्य दूसरे आचार्योंके ग्रन्थोंसे संग्रह किये गये हैं और कई आचार्योंके नाम भी उन पद्योंके साथ दिये हैं; जैसे जटासिहनन्दाचार्य, अकलंकदेव और विद्यानन्द स्वामी ।

माघनन्दिश्रावकाचार ।

भवनकी सूचीमें इसे भाषाका ग्रन्थ लिखा है परन्तु यह प्राकृत न होकर संस्कृतमिश्रित कनडी भाषाका ग्रन्थ है। इसके मंगलाचरणमें भी ‘वक्ष्येकर्णाट-भाषया’ ये शब्द साफ दिये हैं। श्रीकुन्दकुन्दाचार्यसे पहले होनेवाले माघनन्दी आचार्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ नहीं है, बल्कि इसके कर्ता दूसरे ही माघनन्दी हैं जो कुमुदेन्दु (कुमुदचन्द्र) भट्टारकके शिष्य और उदवेन्दुके प्रशिष्य थे। कर्णा-

टककविचरित्रके कर्तानि इन्हें ‘समुदायकर माघनन्दि’ लिखा है और इनका समय ई० सन् १२६० दिया है। इससे यह ग्रन्थ विक्रमकी १३ वीं या १४ वीं शताब्दीका बना हुआ मालूम होता है। इन्हीं माघनन्दीकी बनाई हुई ‘शास्त्रसार समुच्चय’ नामक ग्रन्थकी एक कर्णाटकी टीका भी है जो छप चुकी है।

प्रमाणलक्षण ।

इस नामका जो ग्रन्थ भवनकी सूचीमें नं० ५२२ पर दिया है वह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें है। उसके पत्रोंकी संख्या ५५ नहीं बल्कि ८० से भी अधिक है। परन्तु शुरूके और अन्तके कुछ पत्र नहीं हैं जिनसे मंगलाचरण और प्रशस्तिका पता चलता; कितने ही पत्र टूट रहे हैं और जगह जगहसे कुछ खण्डित भी हो रहे हैं। ग्रन्थको पूरा देखनेका अभीतक अवसर नहीं मिला, इससे न तो यह मालूम हो सका कि ग्रन्थ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है और न ग्रन्थके नामका ही ग्रन्थपरसे कुछ स्पष्टीकरण हो सका। हाँ, इतना जरूर मालूम हुआ है कि यह उच्च कोटिका कोई न्यायग्रन्थ है। इस नामका ग्रन्थ अकलंकदेवका बनाया हुआ मैसूरकी सरकारी लाइब्रेरीमें मौजूद है जिसकी कापी कराकर भिजवानेके लिए हमने मैसूरके भाइयोंसे प्रार्थना की थी। परन्तु खेद है कि अभीतक उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया ! हम अब इसके लिए श्रीमान् सेठ वर्धमानप्पाजीसे प्रार्थना करते हैं कि वह लाइब्रेरीसे उक्त ग्रन्थकी कापी कराकर उसे माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके मन्त्री साहबके पास बम्बई या हमारे पास शीघ्र भिजवा दें, जिससे उसका उद्धार और प्रचार हो सके। कापीकी इजरात दी जायगी।

सिद्धान्तसार ।

इस नामके जो तीन ग्रन्थ भवनकी सूचीमें दिये हुए हैं उनमेंसे जिसका कर्त्ता भट्टारकसकालकीर्ति लिखा है वह 'सिद्धान्तसार' नहीं, किन्तु उसका नाम 'सिद्धान्तसारदीपक' ही है, जैसा कि हमने पहले सूचित किया था। दूसरा ग्रन्थ जो जिनेन्द्रदेवाचार्यके नामसे पहले ग्रन्थके नीचे दिया है, वह वही प्राकृत ग्रन्थ है जिसका मंगलाचरण हमने सेठ माणिकचन्द्रके 'प्रशस्तिसंग्रह' रजिस्टरके अधार पर उद्धृत किया था। परन्तु इसकी गाथा-संख्या ७७ के स्थानमें ८० है। तीसरा ग्रन्थ भी यही प्राकृत ग्रन्थ है जो कनडी अक्षरोंमें लिखा हुआ है। हाँ, इसके साथ प्रभाचन्द्रकी बनाई हुई कनडी टीका अधिक लगी हुई है। सूचीमें इसकी भाषा संस्कृत गलत दी है और पत्र-संख्या भी ४० के स्थानमें १४३ गलत दर्ज की है। इस ग्रन्थकी एक संस्कृत टीका भी हालमें भवनको उपलब्ध हुई है जो माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित होने योग्य है। यह टीका किसकी बनाई हुई है, इसका यद्यपि अभी तक ठीक निश्चय नहीं हुआ, तौ भी टीकाकारके निम्नलिखित मंगलाचरणपरसे ऐसा ख्याल उत्पन्न होता है कि शायद यह टीका ज्ञानभूषण भट्टारककी बनाई हुई है जो कि विक्रमकी १६ वीं शताब्दीमें हो गये हैं :—

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ
लक्ष्मीवीरेन्द्रसेवितं ।

भाष्यं सिद्धान्तसारस्य

वक्ष्ये ज्ञानसुभूषणम् ॥ १ ॥

प्राकृतका यह सिद्धान्तसार ग्रन्थ 'जिनचन्द्र' का बनाया हुआ है या कि

जिनेन्द्र देवाचार्यका, इस विषयमें सिर्फ इतना बतला देना काफी होगा कि मूल ग्रन्थमें 'जिणइन्देण' ऐसा पाठ है और उसके टिप्पणके तौर पर 'जिनेन्द्रदेवाचार्य-निन्दगताः' ऐसा अर्थ सूचित किया है। कनडी टीकावाली प्रतिके मूलमें 'जिनचन्द्रेण' पाठ दिया है, परन्तु अर्थमें वही 'जिनेन्द्रदेवाचार्य' नाम सूचित किया है। और संस्कृत टीकामें मूल पाठ वही 'जिणइन्देण' रक्खा है और उसका अर्थ 'जिनचन्द्रनाम्ना सिद्धान्तग्रन्थवेदिना' दिया है। इन सब उल्लेखों पर विचार करते हुए, हमारी रायमें, ग्रन्थकर्त्ताका नाम ज्यादातर 'जिनचन्द्र' ही प्रतीत होता है। अस्तु; भवनके ये सब ग्रन्थ उस सिद्धान्तसार नामके तर्क ग्रन्थसे भिन्न हैं जिसका उल्लेख श्रीजयशेखर सूरिने अपने 'षड्दर्शन समुच्चय' नामके ग्रन्थमें किया है और जिसकी खोजके लिए ही वह नोट लिखा गया था। इस तर्क ग्रन्थका पता लगाते हुए हमें मूडबिद्रीके पंडुवस्ति भंडारकी सूची परसे यह मालूम है कि वहाँ 'सिद्धान्तसार प्रमाण' नामका एक संस्कृत ग्रन्थ है, जिसकी श्लोक-संख्या ७०० (सात सौ) है और जो 'भावसेन' मुनिका बनाया हुआ है। ग्रन्थके नामके साथ 'प्रमाण' शब्द लगा होनेसे साफ जाहिर है कि यह तर्क ग्रन्थ है और 'भावसेन' मुनि भी बहुत बड़े तार्किक विद्वान् हुए हैं, इसलिये बहुत करके यह दिग्म्बरोंका वही तर्क-ग्रन्थ जान पड़ता है जिसे जयशेखर सूरिने जयलक्ष्मीको दिलानेवाला परमकर्कश तर्कग्रन्थ प्रतिपादन किया है। अतः माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला और भवनके मंत्री साहवानको यह ग्रन्थ उक्त भण्डारसे नकल कराकर शीघ्र मँगाना चाहिए और इसका जल्दी उद्धार करना चाहिए।

रत्नमाला ।

यह श्रावकाचार विषयका एक छोटा सा, ६७ श्लोक परिमाण अच्छा संस्कृत ग्रन्थ है। ग्रन्थके अन्तिम पद्यमें 'स शुद्ध-भावनो नूनं शिवकोटित्वमाप्नुयात्' यह वाक्य उत्तरार्ध रूपसे दिया है और इसके बाद "इतिश्री समन्तभद्रस्वामिशिष्यशिव-कोट्याचार्य्य विरचिता रत्नमाला समाप्ता" यह समाप्तिसूचक वाक्य है। इससे यह ग्रन्थ स्वामिसमन्तभद्रके शिष्य शिवकोटि आचार्य्यका बनाया हुआ मालूम होता है। ग्रन्थके मंगलाचरणमें वीर भगवान और अनेकात्तमय अर्हद्वचनके बाद सिर्फ सिद्धसेन भट्टारक और स्वामिसमन्त-भद्रकी ही स्तुति की गई है। ये दोनों स्तुतियाँ इस प्रकार हैं:—

सदाऽवदातमहिमा

सदा ध्यानपरायणः ।

सिद्धसेन मुनिर्जीयाद्

भट्टारक पदेश्वरः ॥ ३ ॥

स्वामी समन्तभद्रो-

मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।

तिष्ठताजिनराजोद्य-

च्छासनाम्बुधिचन्द्रमाः ॥४॥

इस ग्रन्थकी, कनड़ी लिपिपरसे, देव-नागरी अक्षरोंमें प्रेस कापी तय्यार करा ली गई है और अब यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें छप जायगा ।

त्रिभंगी ।

'त्रिभंगी' नामके जिन चार ग्रन्थोंका उल्लेख भवनकी सूची परसे किया गया था, उनमेंसे १००१ और १००२ नम्बरके ये दोनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र आचार्य्यके बनाये हुए हैं, दोनोंका मूल एक ही है और वह प्राकृत भाषामें है ।

सूचीमें १००२ नम्बरवाले ग्रन्थकी भाषा जो संस्कृत लिखी है वह गलत है। यह मूल प्राकृत ग्रन्थ कनड़ी टीका सहित है। इसकी पत्र-संख्या १४० है, सूचीमें वह २६२ गलत दर्ज हुई है। इसी तरह १००१ नम्बरवाले ग्रन्थकी पत्रसंख्या भी सूचीमें ८ की जगह १४ गलत दर्ज है। यह प्रति अधूरी है। तीसरा १००३ नम्बरवाला ग्रन्थ अभी तक भवनमें मिला नहीं। परन्तु जहाँ तक हम समझते हैं, वह नेमिचन्द्रकी इसी त्रिभंगीका, नं० १००२ के सदृश, कनड़ी टीकावाला ग्रन्थ गोम्मटसारके कर्ता नेमि-चन्द्राचार्य्यका बनाया हुआ है और इसकी कितनी ही गाथाएँ गोम्मटसारमें भी ज्यों-की त्यों पाई जाती हैं। चौथा 'त्रिभंगी' ग्रन्थ जो देवनागरी लिपिमें है और जिसे सूचीमें श्रीकनकनन्दीका बनाया हुआ लिखा है, वह वास्तवमें कई त्रिभंगियोंका एक संग्रह है, उसमें उक्त नेमिचन्द्रकी भी त्रिभंगी है और कनकनन्दीकी त्रिभंगीके दो पाठ हैं जिनमेंसे एकमें ४८ और दूसरे में ५२ गाथाएँ हैं। कनकनन्दीकी यह त्रिभंगी मंगलाचरण और प्रशस्ति सहित गोम्मटसारके कर्मकांडमें ज्योंकी त्यों उद्धृत की गई है और इसे उक्त ग्रन्थका तीसरा अधिकार बनाया गया है; सिर्फ ८ या १२ गाथाएँ छोड़ी गई हैं और कुछ गाथाओंका क्रम भी बदला गया है। प्रशस्तिकी वे गाथाएँ जो गोम्मटसारमें भी ज्योंकी त्यों उठाकर रक्खी गई हैं, इस प्रकार हैं:—

वर इंदणंदिगुरुणो पासे

सोऊण सयलसिद्धंतं ।

सिरिकणयणंदिगुरुणा

सत्तट्टाणं समुदिट्ठं ॥

जह चक्केण य चक्की

छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।

तह भइचक्रेण मया

छक्खंडं साहियं सम्मं ॥

इससे पाठक समझ सकते हैं कि गोम्मटसार कितना अधिक संग्रह ग्रन्थ है, जैसा कि हमने पहले भी एक बार सूचित किया है। अस्तु; ऐसी हालतमें कनकनन्दीकी त्रिभंगीके नामसे जो पत्र-संख्या (७३) और श्लोक संख्या (१४००) सूचीमें दी है, वह गलत है। कनकनन्दीकी यह त्रिभंगी भी माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला-में छप जानी चाहिये, जिससे मूल ग्रन्थ अपने असली रूपमें विद्वानोंके सामने रहे और गोम्मटसारके अध्ययन करने-वालोंको भी छूटे हुए पद्योंका सम्बन्ध मिलानेसे कुछ विशेष अनुभव हो सके।

(क्रमशः)

करते हैं ।

(श्रीयुत भगवन्त गणपति गोइलीय ।)

त्याग सदा तुष धान्य समान

महा चिरसत्य गहा करते हैं ।

कोई सुनो न सुनो हम सन्तत

ही वह सत्य कहा करते हैं ॥

दोष नहीं; फिर भी हँसके

सबकी फटकार सहा करते हैं ।

जातिहितैषितामें दिन रात

लगे बिन स्वार्थ रहा करते हैं ॥

सिद्धवर कूट ।

(ले० श्रीयुत भगवन्त गणपति गोइलीय ।)

(१)

सिद्धवरकी ही असीम पुनीतता,—

पातकीको खींच ले आई इधर ;

मैं नहीं आया न मेरा दोष है,

हे अचल ! हे शैल ! हे सारंगधर !

(२)

फिर भला क्यों मौन है धारण किया ?

सोचते हो क्या कि हूँ मैं पातकी ?

हाय तुम ही सोचने जब यों लगे—

तो कमी कलिमें रही किस बातकी ?

(३)

मौनकी कुछ दूसरी ही बात है,

गिरि ! न तुम त्यों सोचते होगे अरे ;

याद क्या तो पूर्व दिन हैं आ रहे—

गर्व मिश्रित सौख्य औ आशा भरे ।

(४)

जब कि मुनिगण ठौर ठौर विराजके,

या लड़े हो योग थे करते रहे ;

और फिर उपदेश दे चिरसुख भरे,

विश्वके विकराल दुख हरते रहे ।

(५)

तो उन्हींके विरहमें या ध्यानमें—

इस तरह एकान्तमें एकाग्र हो—

ध्यान क्या तुम कर रहे आनन्दसे ?

धन्य गिरिवर सिद्धिवर ! तुम धन्य हो ।

(६)

या कि उनकी स्वार्थपरता पर तुम्हें,

हे निराश्रित त्यक्त गिरि ! कुछ खेद है ?

तो विचारो नित्य होता वृक्षका—

विहग दलसे उषामें विच्छेद है ।

(७)

पर बिटप तो नित्य हँसता खेलता,

और हर हर गीत गाता सर्वदा ;

चन्द्रिकाके साथ करता मोद है,

है न होता मग्न दुखमें एकदा ।

(८)

और तो फिर सोचते हो क्या भला ?
पूर्व वैभव ? आज भी वह कम नहीं,—
इस तुम्हारी धूलिका कण एक भी—
विश्वकी सम्पत्तिसे मौलिक कहीं ।

(९)

सत्य है वह पुरणकाल न अब रहा,
वृक्ष भी तुमपर न उतने हैं भले ;
और फिर वे फल फलाते हैं नहीं,
अच्छतुमें क्यों फूलने फलने चले ?

(१०)

बात ऋषियोंकी किनारे ही रही,
आज उतने विहग क्या बसते यहाँ ?
इन्द्रका आना तुम्हें अब स्वप्न है,
पतित पापी भी अरे आते कहाँ ?

(११)

रो दिये खगकी चहकके व्याजसे,
शान्त हो हे सिद्धिवर ! ढारस धरो ;
नर्मदा भी है तुम्हारे दुःखसे,
दुःखिनी, कुछ ध्यान उसका भी करो ।

(१२)

नर्मदा तो आज भी रोती हुई—
प्रिय तुम्हारे पूर्व वैभवकी कथा—
कह रही है, वह रही बन मन्थरा,
सान्त्वना दे बोलती “यह दुख वृथा ।”

(१३)

नर्मदे ! तू कौन है ? कह तो तनिक,
काम तेरे हैं अलौकिकता भरे ;
परिक्रमा देती उधर ओंकारकी,
इधर इनके चरणमें मस्तक धरे ।

(१४)

क्या रही दृष्टान्त है दिखला रही—
एकसे हो उभय धारा तू यहाँ ;
“जैन वैष्णव आदि सब ही एक हैं,
एक उद्गम, एक मुख सबका वहाँ ।”

(१५)

भेद मत रक्खो अनादर मत करो,
तुम किसीसे धर्मके हित मत लड़ो ;

स्वीयको जानो उचित उन्नति करो,
बुरा कहनेमें किसीके मत पड़ो ।

(१६)

सिद्धिवर ! गाओ यही अब भावना,
“वीर प्रभु सा शीघ्र ही अवतार हो ;
स्वार्थ, हिंसा दूर हो जावें सभी,—
विषमताका अब न कुछ व्यवहार हो ।

(१७)

मुनि वही घूमें पुनः इस देशमें,—
शान्ति सुखका फिर वही विस्तार हो ;
दानवी दुर्भाव सारे नष्ट हों—
मुक्त हों हम, देशका उद्धार हो ।”

प्रतिमाके लेखपर विचार ।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने देहली, सेठके कूचेके जैनमन्दिरकी एक प्रतिमाका लेख अपने जैनमित्रके गताङ्क नं० ८ में प्रकाशित किया है और उसके सम्बन्धमें यह लिखकर कि “इसमें जो संवत् ४६ है वह यदि विक्रम संवत् माना जाय तो वह प्रतिमा साढ़े उन्नीस सौ वर्षकी प्राचीन है,” इतिहासज्ञ विद्वानोंको उसपर विचार करनेकी प्रेरणा की है। अतः हम उसपर अपने विचार नीचे प्रकट करते हैं। ब्रह्मचारीजीको चाहिए कि वे इन्हें अपने पाठकोंपर भी प्रकट कर दें, जिससे व्यर्थ ही किसी प्रकारका कोई भ्रम फैलने न पावे।

प्रतिमाका उक्त लेख, जिसकी आठ पंक्तियाँ हैं, दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। पहले भागकी चार पंक्तियोंमें उन ‘सहस्रकीर्ति’ मुभिकी वंशपरम्पराका उल्लेख है जिनके उपदेशसे यह प्रतिमा स्थापित अथवा प्रतिष्ठित कराई गई है। साथ ही, उसके इस तरहपर स्थापित तथा प्रतिष्ठित किये जानेका

समय भी दिया है, जो विदादप्रस्त है । दूसरे भागकी शेष चारों पंक्तियोंमें उन गृहस्थोंका परिचय है जिन्होंने उक्त मुनिके उपदेशसे इस प्रतिमाको स्थापित अथवा प्रतिष्ठित कराया और जो नित्य इसकी पूजा-वन्दना किया करते थे । ऐतिहासिक निर्णयके लिए लेखका पहला भाग सबसे अधिक जरूरी और मुख्य है* और इसलिए उसे हम ज्योंका त्यों नीचे उद्धृत करते हैं :—

“संवत् ४९ वर्षे जेष्ठ वदी ६ बुधवारे श्रीमूलसंघे नद्याम्राए धवलाकारः० गणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० पद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भ० श्रीशुभचंद्रदेवा तत्पट्टे श्रीजिनचंद्राम्राये मुनिश्रीसहस्रकीर्ति उपदेशात् ।”

लेखके इस अंशसे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मुनि सहस्रकीर्ति उन श्रीजिनचन्द्रकी आश्रयमें थे जो कि भट्टारक पद्मनंदिके पट्टधर श्रीशुभचन्द्राचार्यके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे । अब देखना यह है कि उक्त ‘श्रीजिनचन्द्र भट्टारक’ कब हुए हैं । उनका निश्चित समय मालूम होनेपर लेखका सब हाल खुल जायगा ।

परिडत मेधावी (मीहा) का बनाया हुआ ‘धर्मसंग्रह श्रावकाचार’ नामका एक ग्रन्थ है जो कि विक्रम संवत् ५४१ में बनकर समाप्त हुआ है । इसकी प्रशस्तिमें ग्रन्थकर्त्ताने अपनेको ‘जिनचन्द्र’ का शिष्य लिखा है और यह प्रकट किया है कि ये जिनचन्द्र श्रीशुभचन्द्राचार्यके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे और शुभचन्द्राचार्य उन पद्मनन्दिके पट्टधर थे जो श्रीकुन्द-

कुन्दाचार्यकी आश्रयमें हो गये हैं । पं० मेधावीने वि० सं० १५१६ में एक दान-प्रशस्ति बनाई थी जो मूलाचारकी वसु-नन्दिवृत्तिकी उस प्रतिमें लगी हुई है जिसका उल्लेख पिटर्सन साहबने अपनी द्वितीय रिपोर्टके पृष्ठ १३६ पर किया है । संबत् १५१६ में उसी दातारकी तरफसे फिर एक दूसरा ग्रन्थ दान किया गया जिसका नाम ‘त्रैलोक्यप्रवृत्ति’ है । उसके साथ भी वह दानप्रशस्ति जुड़ी हुई है और जिसका उल्लेख पिटर्सन साहबने अपनी चौथी रिपोर्टमें किया है । इस दान-प्रशस्तिमें भी पं० मेधावीने, जिनका दूसरा नाम ‘मीहा’ था, अपने गुरु जिनचन्द्रके सम्बन्धमें यही सूचित किया है कि वे उन शुभचन्द्राचार्यके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे जोकि पद्मनन्दिके पट्टधर थे । यथा:—

अथश्रीमूलसंघेऽस्मिन्

नंदिसंघेऽनघेजनि ।

बलात्कारगणस्तत्र

गच्छः सारस्वतस्त्वभूत् ॥११॥

तत्राजनि प्रभाचन्द्रः

सूरिचन्द्राजितांगजः ।

दर्शनज्ञानचारित्र

तपोवीर्यसमन्वितः ॥१२॥

श्रीमान् बभूव मार्तण्ड-

स्तत्पट्टोदय भूधरे ।

पद्मनंदी बुधानंदी

तमच्छेदी मुनिप्रभुः ॥१३॥

तत्पट्टाम्बुधिसञ्चान्द्रः

शुभचन्द्रः सतांवरः ।

पंचाक्षवनदावाग्निः

कषायक्षमाधराशनिः ॥१४॥

तदीय पट्टाम्बर भानुमाली

क्षमादि नानागुणरत्नशाली ।

* यह ‘बलात्कार’ होना चाहिए; क्योंकि इस गणका ठीक नाम यही है । सम्भव है कि प्रेसकी गलतीसे ऐसा अशुद्ध रूप द्रपा हो ।

भट्टारकश्रीजिनचंद्रनामा

सैद्धान्तिकानां भुवियोस्तिसीमा ॥१५॥

× × + ×
तत्पुत्रो जिनचंद्रस्य

पादपंकज षट्पदः ।

मीहारव्यः पंडितस्वस्ति

श्रावकव्रतभावकः ॥२५॥

इरिडयन एरिटिकवेरीमें नन्दिसंघकी जो पट्टावली प्रकाशित हुई है उसमें भी जिनचन्द्रकी यही गुरुपरम्परा दी है और साथ ही उनके पट्टपर प्रतिष्ठित होनेका संवत् भी १५०७ दिया है* । और भी कई जगह इस गुरुपरम्पराका उल्लेख है । इन सब प्रमाणोंसे साफ जाहिर है कि प्रतिमा के लेखोंमें जिन श्रीजिनचन्द्रका उल्लेख है वे वही जिनचन्द्र हैं जो पं० मेधावीके गुरु थे और उनका अस्तित्वकाल विक्रमकी १६वीं शताब्दी है । और इसलिए उनकी आस्नायमें होनेवाले सहस्रकीर्ति या तो उनके समकालीन थे और या उनसे भी कुछ पीछे हुए हैं । ज्यादातर खयाल तो यही होता है कि वे जिनचन्द्रके शिष्योंमें* थे; नहीं तो वे अपने नामसे पूर्व अपने गुरुका नाम जरूर उस लेखमें लिखाते । पेसी हालतमें उक्त लेखका संवत् ४६ गलत है, यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता । हमारी रायमें वह संवत् १५४६ होगा । 'संवत्' शब्दके बाद १५ का अंक या तो बिस गया है या उस काबुलीने, जिससे बहुत रुपया देकर प्रतिमा खरीदी गई है,

* देखो जैनसिद्धांत भास्कर किरण ४ पृष्ठ ७६ ।

* जिनचन्द्र भट्टारकके बहुतसे शिष्य थे, ऐसा उक्त दान प्रशस्तिसे मालूम होता है । उसमें कुछके नाम दिये हैं और शेषको 'अन्ये च दशधर्मधरा वराः' इन शब्दोंके द्वारा सूचित किया है । इन शब्दोंमें वे रत्नकीर्ति भी दाखिल हैं जिनका उल्लेख धर्मसंग्रह अ० में आस तौरसे किया गया है ।

प्रतिमाको प्राचीन बनाकर अधिक धन लेनेकी गरजसे उसे किसी प्रकार दूर किया है । परन्तु यह बात प्रतिमाकी गौरसे जाँच करने पर मालूम हो सकती है । उक्त अङ्कके दूर किये जानेकी हालतमें 'संवत्' के बाद कुछ स्थान खाली होगा । और यदि ऐसा नहीं है तो समझना चाहिये कि १५ का अङ्क उत्कीर्ण होनेसे रह गया है । और यह तो कह नहीं सकते कि उस वक्त आधा संवत् लिखनेका भी रिवाज था, जैसाकि आजकल अंग्रेजीका सन् प्रायः अर्थरूपसे लिखा जाता है— १६२० को २० लिखते हैं—क्योंकि इस प्रकारके रिवाजका दूसरा कोई उदाहरण उस वक्तका देखनेमें नहीं आता ।

एक बात यहाँ पर और भी प्रकट कर देनेकी है; और वह यह है कि इरिडयन एरिटिकवेरीमें प्रकाशित नन्दिसंघकी पट्टावलीसे यह भी मालूम होता है कि उक्त जिनचन्द्रके पश्चात् उनका पट्ट-दो भागोंमें विभक्त हो गया है, एक गद्दी नागौरमें स्थापित हुई और दूसरी चित्तौड़में । नागौरके भट्टारकोंकी नामावलीमें सहस्रकीर्ति नामके दो आचार्योंका उल्लेख है और उनका समय, उक्त नामावलीमें दिये हुए कुछ संवत्तोंके अनुसार, क्रमशः १७वीं और १६वीं शताब्दीके करीब होता है । यदि पट्टावलीका यही सब उल्लेख ठीक है और प्रतिमाके लेखमें जिन सहस्रकीर्तिका नाम है वे इन्हीं दोनोंमें कोई एक हैं, तो प्रतिमाका, उक्त संवत् १६४६ या १८४६ होना चाहिये । परन्तु ऐसा होनेकी संभावना बहुत कम है; क्योंकि लेखमें सहस्रकीर्तिसे पहले उनके दूसरे किसी साक्षात् गुरुका नाम नहीं है, जिसके उस हालतमें होनेकी बहुत ज्यादा संभावना थी ।

बहुविवाह विरोधका रहस्य ।

[लेखक—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।]

कलकत्तेकी खण्डेलवाल जैन महासभामें एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ है कि किसी खण्डेलवाल पुरुषको एक स्त्रीके रहते हुए दूसरा, तीसरा आदि विवाह नहीं करना चाहिए। उक्त महासभाके संस्थापक या सर्वस्व पं० धन्नालालजी काशलीवाल स्वयं इस प्रस्तावके विरुद्ध थे। इसके पहले और भी एक दो बड़ी बड़ी सभाओंमें वे बहुविवाहका मण्डन कर चुके हैं। बहुतसे शिक्षित—यहाँतक कि परिडतजन भी—आपके इस मण्डन-हठको बड़े आश्चर्यकी दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु हमें इसपर ज़रा भी आश्चर्य नहीं होता है। जब वे जैनकथा-ग्रन्थोंतकको अक्षरशः सत्य मानते हैं—यहाँतक कि त्रिवर्णाचार जैसे ग्रन्थोंको भी प्रमाण-कोटिमें एक इंच भी पीछे रखना पसन्द नहीं करते हैं, तब उनके द्वारा बहुविवाहका विरोध हो भी कैसे सकता है? हमारा प्रायः प्रत्येक महापुरुष या शलाकापुरुष हज़ारों स्त्रियोंका धनी रहा है। बहुतसे लोग तो उनकी महत्ताका माप उनकी स्त्रियोंकी संख्यासे ही किया करते हैं। चक्रवर्तीके ६६ हज़ार, नारायणके १६ हज़ार, वासुदेवके ८ हज़ार, इस तरह पदकी मर्यादाके अनुसार ही तो स्त्रियोंकी संख्या बतलाई गई है। और त्रिवर्णाचारमें तो यहाँतक कहा है कि जैन गृहस्थको सन्तान अवश्य उत्पन्न करना चाहिए—यह उसका धर्म है! जो ऋतुस्नाता स्त्री अपने पतिसे सम्भोग नहीं करती है वह दूसरे जन्ममें कुत्ती, शृगाली आदिका जन्म पाती है। सुनते हैं, परिडतजीने ये शास्त्रप्रमाण सभामें उपस्थित भी किये थे। फिर भी लोगोंने

नहीं माना और बहुसम्मतिके ज़ोरपर उक्त प्रस्ताव पास हो गया।

ऐसा क्यों हुआ? बहुविवाहके अनुकूल शास्त्र-प्रमाणोंके रहते हुए और समाजके एक धुरन्धर परिडतके द्वारा उसके अनुकूल व्यवस्था मिलते हुए भी खण्डेलवाल समाजने उसे क्यों श्रृणित और त्याज्य ठहरा दिया, इस पर कुछ अधिक विचार करनेकी आवश्यकता है। इसीके भीतर प्रत्येक सुधारका और समबानुकूल प्रगतिका बीज छिपा हुआ है।

जो लोग यह समझते हैं कि समाजमें प्रत्येक सुधार शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार किये जाते हैं और अशिक्षित जनता तो शास्त्रोंको बहुत अधिक प्रमाण मानकर चलती है, उन्हें इस घटनापर विशेष मनोयोगपूर्वक विचार करना चाहिए। हमारी समझमें साधारण जनता शास्त्रोंकी अपेक्षा रूढ़ियोंकी अत्यधिक गुलाम होती है। इस विषयमें हम और भी कई बार लिख चुके हैं। 'शास्त्राद्रूढिबलीयसी' का सिद्धान्त हमारे समाजके प्रायः प्रत्येक कार्यमें स्पष्टतासे दिखलाई देता है। जिन लोगोंने खण्डेलवाल सभामें उक्त प्रस्ताव पास कराया है, ऐसा नहीं है कि वे इस बातको न जानते हों कि जैनपुराणसे बहु-विवाहकी प्रथाका प्रायः अनुमोदन ही होता है; परन्तु एक तो वे देख रहे हैं कि पारिवारिक सुखशान्तिके लिए एक पुरुषके लिए एकसे अधिक स्त्रीका होना ठीक नहीं है; दूसरे देश भरमें प्रायः यह प्रथा इतनी रूढ़ हो गई है कि अब इसके विरुद्ध चलनेका साहस तक लोग नहीं कर सकते, तीसरे हमारी शासक जाति जिसका अनुकरण ज्ञात और अज्ञात भावसे प्रायः सारा ही देश कर रहा है—इस प्रथाको एक सभ्यताकी निशानी समझती है; चौथे देशकी वर्तमान परिस्थितिमें

सामधारण जनताके लिए एकसे अधिक स्त्रियाँ रख सकना शक्य भी नहीं है; और खंडेलवाल जातिकी तो यह दशा है कि उसमें लड़कियोंकी कमीके कारण हजारों युवा एक विवाह करनेका भी सुयोग नहीं पा रहे हैं, तब एकाधिक विवाह करना तो सम्भव ही कैसे हो सकता है; और पाँचवें उनके मनमें रह रहकर यह प्रश्न भी उठता है कि हम शास्त्रोंकी सभी बातें मानकर कहाँ चलते हैं? यदि बहुविवाह शास्त्रसम्मत है तो असवर्ण विवाह, अन्य जातीय विवाह, अन्य धर्मीय विवाह, गान्धर्व विवाह, मामाकी लड़कीके साथ विवाह, आदि भी तो शास्त्रनिषिद्ध नहीं हैं। परन्तु हम इस प्रकारके विवाहोंको कहाँ पसन्द करते हैं—इन्हें भी तो हम बुरी दृष्टिसे देखते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे उक्त बहुविवाह-विरोधी प्रस्ताव बहुसम्मतिसे पास किया गया है; और जिन लोगोंके आँख है, वे इस बातको बड़ी स्पष्टतासे देख रहे हैं कि जनता केवल शास्त्रोंके ही वचनोंको सिरपर रखकर नहीं चलती, वह अपने दूसरे सुभीतोंका भी खयाल रखती है। और शास्त्रकार इस बातका अनुभव कर चुके थे, इसी कारण उन्होंने भी प्रत्येक कार्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादिका विचार करके करनेकी व्यवस्था दी है।

यहाँपर प्रसङ्गवश हमको विधवा विवाहकी प्रथा पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिए। यद्यपि हमारा विश्वास है कि अन्य विवाहोंके समान विधवा विवाह भी शास्त्रनिषिद्ध नहीं किया जा सकता, फिर भी यदि थोड़ी देरके लिए यही मान लिया जाय कि यह निषिद्ध ही है, तो भी ऊपरके उदाहरणसे हमें यह मानना पड़ेगा कि केवल शास्त्रनिषिद्ध होनेके कारण ही किसी प्रथाको रोका नहीं जा सकता। हमारी सामाजिक और पारि-

वारिक अवस्थायें ऐसी तेजीके साथ बदल रही हैं, जनताके मानसिक क्षेत्रमें ऐसी विलक्षण क्रान्ति मच रही है, अविवाहितोंकी संख्या इतनी बढ़ रही है, स्त्रियोंके दुःखों और कष्टोंकी ओर शिक्षितोंका हृदय इतना अधिक आकर्षित हो रहा है, और स्त्रियाँ भी दिन पर दिन इतनी अधिक सज्जान होती जा रही हैं कि वह समय बहुत दूर नहीं जान पड़ता जब कि विधवा विवाहकी प्रथा भी बहुसम्मतिसे स्वीकार कर ली जायगी।

बहुतोंके खयालमें इस प्रथाके प्रचलित होनेमें सबसे बड़ी बाधा शास्त्रविरोधकी है; परन्तु हम इसे नहीं मानते। हमारे खयालमें तो इस समय यदि कोई बड़ेसे बड़ा परिदित किसी सर्वोपरि प्रामाणिक ग्रन्थकर्ताके इस तरहके स्पष्ट प्रमाण भी जनताके सामने उपस्थित कर दे कि विधवा विवाह करना जायज़ है—धर्मसम्मत है—तो भी दक्षिणकी सेतवाल चतुर्थ पंचम आदि दो चार जैन जातियोंको छोड़कर अन्य जैन जातियाँ कदापि इस प्रथाको एकाएक स्वीकार नहीं करेंगी। वे उस शास्त्रको अप्रामाणिक भले ही न ठहरावें, और विधवा विवाहको धर्मसम्मत भी मान लें, तो भी वे यह कहकर छुटकारा पानेका रास्ता अवश्य निकाल लेंगी कि—“यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं ना करणीयं ना चरणीयं।” असवर्ण विवाह, मामाकी लड़कीके साथ विवाह आदि शास्त्रनिषिद्ध बातोंको इसी तरहकी बातें कहकर ही तो लोग टाल दिया करते हैं। हमारी समझमें इस प्रथाके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा यही ‘लोकविरुद्धता’ की है। जब तक यह प्रथा लोकविरुद्ध बनी रहेगी—‘लोक-लाजका हौआ’ लोगोंको डराता रहेगा, तभीतक लोग इसे ग्रहण करनेमें संकुचित होंगे। परन्तु यह लोकविरुद्धता

भी चिरजीविनी नहीं है। ज्यों ज्यों लोगोंकी मानसिक दुर्बलतायें कम होंगी, 'मनःपूतं समाचरेत्' के सिद्धान्तको लोग मानने लगेंगे, समाजके अग्रस्थानीय सदाचारी धनी और विद्वान् लोग साहस करके इस प्रथाका अवलम्बन करना शुरू कर देंगे, विधवा स्त्रियाँ और अविवाहित पुरुष यह समझने लगेंगे कि छिपकर महान् पाप करनेकी अपेक्षा खुलकर विवाह कर लेना अच्छा है, त्यों त्यों इस प्रथाके मार्गकी बाधायें आपसे आप हटने लगेंगी और शास्त्रोंके विरोध और अनुमोदनकी परवा किये बिना ही विधवा-विवाहकी प्रथा चल निकलेगी।

सेठ लालचन्द्रजी सेठीके भाषणका कुछ सार भाग ।

(गताङ्कसे आगे ।)

भाइयो ! सच समझिये कि अगर आपको जैन-धर्मका अस्तित्व कायम रखना है, तो सबसे पहले आप जिनबाणीको संभालिये; तभी आपका धर्म भी कायम रहेगा। जाति और भाषाका बहुत गहरा सम्बन्ध है। इतिहास हमें बता रहा है कि निजका साहित्य नष्ट होनेसे बड़े बड़े देश गारत हो गये। फिर एक कौमका तो कहना ही क्या है ! मैं अपने भाइयोंसे जोरकी अपील करूँगा कि पुराने भंडारोंको खुलवाकर सारे शास्त्रोंको बाहर लाया जाय, उनको तरतीबवार रक्खा जाय, उनकी सूची बनाई जाय, उनकी बराबर सम्हाल रक्खी जाय, उनकी वृद्धिकी तरफ खूब ध्यान रहे और वे हमारे भाइयोंको बे-रोकटोक खूब स्वाध्यायके लिए दिये जावें। एक जगहके शास्त्रकी दूसरी जगह अजरत हो तो हमारे भाई बहुत

आसानीके साथ उसकी नक़्क करवाकर बहुत जल्दी उस जगह भेज दें। चूहे और दीमकके खाये खरिडित शास्त्रोंकी यथा-शक्ति पूर्ति की जाय और फिर उनको छुपवाकर सस्ते मूल्यमें उनका प्रचार किया जाय। हर्षकी बात है कि कुछ सज्जनोंने इस काममें हाथ डाला है। फिलहाल मैं "माणिकचन्द्र संस्कृत ग्रन्थ-माला" का काम तारीफके लायक कहूँगा। समाजका फर्ज है कि इस ग्रन्थमालाको खूब सहायता देकर हमारे प्राचीन शास्त्र स्वल्प मूल्यमें प्रकाशित करावे। इससे साहित्यका उद्धार होगा और हमारे माणिकचन्द्रजीके स्मारकोंमें यह रत्न भी अपूर्व होगा क्योंकि उन्होंने जातिकी बहुत कुछ सेवा की है। इस ग्रन्थमालाका सम्पादन भी सन्तोषजनक हो रहा है।

* * * * *

"मुझे आशा है कि हिन्दी साहित्यकी उन्नतिमें भी हमारे जैनियोंका अच्छा भाग है। हमें चाहिए कि हम राष्ट्रभाषा हिन्दीकी उन्नतिके लिए खूब प्रयत्न करें और किसीसे पीछे न रहें।"

"श्रीयुत बा० देवेन्द्रप्रसादजी जैन आरासे अंगरेजीमें जैन ग्रन्थोंका उल्था निकालनेका बहुत प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।"

"हस्तलिखित ग्रन्थ तो मिलना दुश्वार है, मगर उस छुपेका प्रचार करनेवाले विज्ञानीको अनेक धन्यवाद है जिसकी कृपासे हमें छुपे ग्रन्थ आसानीसे और कम कीमतमें मिल जाते हैं। फिर ज्ञान-सम्पादन करनेसे वञ्चित रहना सिर्फ हमारा दोष है, हमारी भूल है।

मेरे खयालसे हस्तलिखित ग्रन्थोंके साथ एक एक प्रति छुपे ग्रन्थोंकी भी पुस्तकालयोंमें रखनी चाहिए और यों साहित्यको तरौताजा रखनेमें जरा भी

कमी नहीं करनी चाहिए। पुस्तकालयों का महत्त्व आप साहबोंसे छिपा नहीं है। मेरी प्रार्थना है कि प्रत्येक मन्दिर, प्रत्येक गाँव, प्रत्येक कस्बे, प्रत्येक शहर और जहाँतक हो सके प्रत्येक घरमें अच्छे अच्छे ग्रन्थोंकी लाइब्रेरियाँ होनी चाहिएँ।”

स्वर्गीय बा० देवकुमारजी द्वारा स्थापित आराके “जैनसिद्धान्त भवन” की प्रशंसा करते हुए आपने कहा—“कुछ दिनों पहले इसने एक ऐतिहासिक पत्र भी निकालना शुरू किया था, परन्तु खेद है कि वह बहुत जल्दी बन्द हो गया। मैं चाहता हूँ कि इस तरहके बृहत् सरस्वती भवन (विद्या-मन्दिर) प्रत्येक प्रान्तमें कमसे कम बहुत जल्दी खुलने चाहिएँ। क्योंकि इन शास्त्रोंकी बदौलत ही अपना पुराना इतिहास, पुराना गौरव और पुराने उच्च नियम जाने जा सकते हैं और आचार-व्यवहारको बतानेवाले भी यही ग्रन्थ हैं।”

विद्या और विद्यालयके सम्बन्धमें जो विचार आपने प्रकट किये हैं वे इस प्रकार हैं—“जैन जातिमें कुछ वर्षोंसे विद्यालय और स्कूल आदि खुले हैं, मगर इनमेंसे जो विद्वान् निकलते हैं उनसे यथेष्ट सन्तोष नहीं होता। जमानेकी गतिको देखते हुए कोरी संस्कृत या प्राचीन विद्यासे अब काम नहीं चलनेका। हम लोग व्यापारी हैं। व्यापार हमारा खास पेशा है—जीवन है। एक जमाना पेसा भी बीत गया कि हमारा काम यहाँके व्यापारसे ही चल जाता था। मगर अब विदेशोंसे व्यापार किये बिना काम नहीं चलता और विदेशोंसे ठीक ठीक व्यापारिक-सम्बन्ध रखनेके लिए जरूरत है कि अँगरेजीकी अच्छी योग्यता हो। हम देखते हैं कि व्यापार विद्या हीके बलसे चलता है। पारसी कौमको देखिए,

आज वह कैसी जगमगा रही है। वह भी हमारी तरह व्यापार-पेशा कौम है। तादादमें हमसे काम है। मगर उनमें विद्याका खूब प्रचार है। यही वजह है कि वे हमसे बड़े हुए हैं और हम लोगोंमें टाटा जैसे संसार-प्रसिद्ध व्यवसायशील उद्योगी व्यापारी नजर नहीं आते। मैं चाहता हूँ कि हमारे भाई धार्मिक हृदसे बाहर न होते हुए संस्कृत, भारतकी राष्ट्र भाषा हिन्दी और अँगरेजीकी पेसी योग्यता प्राप्त करके निकलें जो अपना जीवन तो भली भाँति निभावें ही—मगर साथ ही बड़े जबरदस्त व्यापारी भी हों, उनकी भी आवाज हो और उनका भी प्रभाव राजनीतिपर पड़े। मैं चाहता हूँ कि यह सभा पेसा प्रबन्ध करे जिससे हम लोगोंकी धार्मिक शिक्षाके ही साथ साथ लौकिक विद्या भी बहुत ऊँचे दर्जेकी हो और हमारी जाति किसीसे भी पिछड़ी न रहे। खाली अँगरेजीके विद्वानोंसे भी काम नहीं चलेगा। हम लोगोंको अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिए और उत्तरोत्तर जातीय तथा धार्मिक गौरव बढ़ानेके लिए सञ्चरित्र और धर्मानुरागी उद्योगशील विद्यार्थी विद्यालयोंमेंसे कैसे निकलें, इत्यादि बातोंका खूब विचारकर विद्याका सिलसिला कायम करना चाहिए। हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति सन्तोषदायक नहीं है।”

पुरानी संस्थाओंमेंसे ‘जैन-सिद्धान्त विद्यालय मोरेना, स्याद्राद महाविद्यालय काशी, ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, महाविद्यालय मथुरा, जैपुरकी जैनपाठशाला और छात्रालयके कामका उल्लेख करते हुए आपने कहा—“मगर इनमें समयानुकूल उचित परिवर्तन करके हमें चाहिये कि इनको ‘शान्तिनिकेतन’ और ‘प्रेम महाविद्यालयके’ ढंगके आदर्श विद्या-

लय बना दें और उनमें उत्तमसे उत्तम व्यापारिक शिक्षा धार्मिक शिक्षाके साथ दी जावे जिससे यह लोक और परलोक दोनों सुधरें और जिनमेंसे आदर्श नव-युवक तैयार होकर निकलें ।

प्राथमिक शिक्षाके लिये जगह जगह जो हमारी जातीय पाठशालाएँ हैं उनका पठनक्रम भी ऐसा रक्खा जाय जो विद्यार्थियोंको उच्च शिक्षा प्राप्त करानेमें उपयोगी हो । इसके सिवा, जहाँ जहाँ पाठशालाएँ नहीं हैं, वहाँ वहाँ अवश्य खुलनी चाहियें । इस तरह पाठशालाओं आदिका उचित प्रबन्ध करके जातिका एक भी बच्चा अशिक्षित न रखना चाहिये । और मेरी सम्मतिसे जो माँ बाप अपने बच्चोंको नहीं पढ़ावें, उनको जातिसे उचित दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिये । समाजका भविष्य बालकोंपर ही निर्भर है । मैं यह भी चाहता हूँ कि शिवालयोंमें और और पढ़ाईके साथ साथ सेवाधर्म भी सिखाया जावे ।”

समाचार-पत्रोंकी आवश्यकता और उनपर अपने विचार प्रकट करते हुए आपने कहा—“जातिकी कुरीतियाँ मिटाने, जातिमें अच्छी नीतियाँ और सदाचार फैलाने, जागृति करने और उत्साह बढ़ानेमें समाचारपत्र भी बड़े अच्छे साधन हैं । खेद है कि सारे दिग्गम्बर जैन समाजमें दो तीनको छोड़कर ये भी नहींके बराबर हैं । उनसे जैसा चाहिये वैसा फायदा नहीं पहुँचता । हमारे सामाजिक पत्र ऐसे होने चाहियें, जो प्राचीन गौरवको प्रकट करते हुए हमें आदर्श बनानेमें सहायक हों । आजकलकी दुनियाँमें तो समाचारपत्रोंके बिना काम ही नहीं चल सकता ।

प्रायः देखनेमें आता है कि जो समाचारपत्र किसीके खिलाफ कोई लेख छापता है, तो दूसरे पत्र उसका द्वेषपूर्ण

भाषामें जवाब देते हैं, जिससे द्वेष उत्तरोत्तर बढ़ता है । जैनसमाजके उपदेश स्वरूप समाचारपत्रोंको भाषा-समितिका विषय नहीं भूल जाना चाहिये ।

कितने ही भाइयोंकी सम्मतिमें चन्द पत्रका वहिष्कार आवश्यक जँचता है । परन्तु इस विचार-स्वातन्त्र्यके जमानेमें इस तरहके वहिष्कार तो बहुत कम चल सकते हैं । आवश्यकता तो यह है कि अहितकर लेखोंका योग्यतापूर्वक जवाब छुपाया जाय । उनको मनानेका यही एक अच्छा साधन है । मेरे खयालसे इस तरह ज्यादा प्रभाव पड़ेगा ।

मैं वर्तमान सामाजिक पत्रोंमें ‘जैन-हितैषी’ और ‘जैनमित्र’ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहूँगा, जिनका सम्पादन बड़ी योग्यतासे किया जाता है । बल्कि ‘जैन-हितैषी’ के कितने ही लेख तो बड़ी खोजके साथ लिखे जाते हैं । हालाँकि मैं उसके कितने ही लेखों और कितने ही विचारोंसे सहमत नहीं हूँ ।”

दानकी प्रथाका उल्लेख करते हुए आपने सब्बेद प्रकट किया कि—“आजकल हमारे समाजमें गुप्तदानकी परिपाटी बहुत कम हो गई है । इससे अपने कई असहाय बन्धु और महिलाओंको हम बहुत कुछ सहायता नहीं पहुँचा पाते । मैं ऐसे दानको वास्तवमें दान न कहकर सहायता कहना ज्यादा उचित समझता हूँ । हमारे असहाय भाइयोंको सहायता जरूर दी जाय । मगर हम चाहें कि बाकायदा नाम दर्ज करके और रसीद लेकर सहायता दें, तो इसमें कदापि सफलता नहीं हो सकती । सहायता तो जितनी गुप्तसे गुप्त दी जाय उतनी ही अच्छी बात है । प्रत्येक धनवानका फर्ज है कि वह अपने शहरके असहाय स्त्री पुरुषोंको पूरी पूरी सहायता देकर अपना जन्म

सफल करे और उन्हें तकलीफसे बचावे। आवश्यकता है—मनुष्य परमार्थमें स्वार्थ समझे। इस जगह मैं नवीन मन्दिर-निर्माणके सम्बन्धमें कुछ कहूँ तो अनुचित नहीं होगा। माना कि प्रतिष्ठा कराना पुण्य और प्रभावनाका कारण है; परन्तु देखनेमें आता है कि कई मन्दिर जीर्ण हो रहे हैं और उन्हें सुधारनेकी कोई फ़िक्र नहीं करता। इसी तरह कई जगह पूजा प्रक्षालके लाले पड़ रहे हैं और समाज ध्यान नहीं देता। ऐसी सूरतमें नवीन मन्दिर बनाया जाना वास्तवमें जैनधर्मकी अवहेलना करना है। पहले इन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करना चाहिये और पूजा प्रक्षालका इन्तजाम। मेरी सम्मतिमें इस समय ऐसे कामोंमें अधिक पुण्य प्रतीत होता है। हाँ, जहाँपर जैन मन्दिर नहीं हों वहाँपर जैन मन्दिर अवश्य बनने चाहिये। बाकी हमारे दानका उपयोग जातिके अभ्युदयके कामोंमें होना ही चाहिये। जैसे—विद्यामन्दिर, पुस्तकालय, जाति भाइयोंके सहायतार्थ फण्ड आदि दान देकर खुलवाना।

हमारे शास्त्रोंमें जीर्णोद्धारका भी महान पुण्य लिखा है। इसलिये ऐसे ऐसे कार्योंमें द्रव्य लगाना उचित है। मेरा मतलब यह नहीं है कि नवीन प्रतिष्ठा कराना मैं अच्छा नहीं समझता,—नहीं। ज़मानेकी हालतको देखकर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका विचार करते हुए अब दानकी प्रथाको पलटना मेरी रायमें बहुत ज़रूरी जचता है।”

फजूलखर्ची और कुरीतियोंको दूर करनेकी प्रेरणा करते हुए आपने यह भी कहा—

“यदि आप चाहते हैं कि हमारी जाति विधवाविवाह आदि कुप्रथाओंसे बची रहे, यदि आप चाहते हैं कि हमारी

जातिके लड़के दूसरी जातिकी लड़कियोंसे विवाह न करें, तो ज़रूरत है बिरादरीमें ऐसा नियम करनेकी, कि जहाँतक हो, हमारे नौजवान भाई कुँवारे न रहें और उनको कन्यायें मिल सकें। यह तबतक न होगा जबतक कि बालविवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़ विवाह आदि सत्यानाशी रीतियोंका समूल संहार न कर दिया जावे। और विवाहके खर्चका नियम यहाँतक बना दिया जावे कि पढ़े लिखे योग्य तरुण युवाको पढ़ी लिखी सुशीला कन्या कमसे कम खर्चमें भी मिल सके, यहाँतक कि लड़के-लड़कियोंका विवाह ५ तकमें हो जावे और किसी प्रकारकी कठिनाई न हो। ऐसे विवाहोंमें हमारे भाई वैसी ही दिलचस्पीके साथ भाग लें, जैसा कि वे लाख रुपये खर्च करने-वालेके विवाहमें लेते हैं। हाँ, इस बातकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है कि विवाह होनेके पहले वरकी इतनी योग्यता हो जानी चाहिए कि वह गृहस्थीको अच्छी तरह चला सके और समाजके लिए भाररूप न हो। यहाँ यह कह देना भी अत्यन्तसे ज्यादा आवश्यक है कि विवाहके समय कन्याकी अवस्था १३ और पुरुषकी १८—१९ वर्षसे किसी हालतमें कम न हो।

“खर्चमें ही मान मर्यादा मानना भयंकर भूल है। बस, हमारी समाजको ऐसे नियम बना देने चाहिए, जिनसे न तो कोई मजबूर होकर ज्यादा खर्च ही करे और न खर्चके कारण कोई लड़का कुँवारा ही रहे। बल्कि जमानेको देखते हुए इस समय सुपात्र कुँवारीको परणा देना मैं पुण्यका काम नहीं तो शुभ काम तो अवश्य कहूँगा। क्योंकि जातिके अस्तित्वको कायम रखनेके लिए ऐसे विवाह आदिकी कुप्रथाएँ नष्ट हो जावेंगी।”

व्यापार और झगड़े टंटोंपर आपने

अपना वक्तव्य प्रकट करते हुए कहा—
“व्यापारमें भी हम लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। सबसे पहले मैं उन भाइयोंका जिक्र करूँगा जो बेरोजगार हैं। ऐसे भाइयोंको सहायता देकर रोजगारमें लगाना—इस तरफ भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। इस मामलेमें मैं आप साहबोंको बहोरे बिरादरीका अनुकरण करनेकी सलाह दूँगा।”

“क्या, छोटा क्या बड़ा, कोई भी काम हमारा न्यायविरुद्ध नहीं होना चाहिए। न्यायपूर्वक उपार्जित किया हुआ द्रव्य ही हमारे समाजका हितसाधन कर सकता है और धार्मिक कार्योंको पूर्णतया सफल कर हमको पुण्यात्मा बना सकता है। इसलिए अपने व्यापारमें हमको सत्य-निष्ठ और निष्कपटतासे काम लेना चाहिए। यदि हमारा व्यापार-व्यवहार, न्याय और सच्चाईसे चले, तो हमको परलोक सुधारनेके सिवा, इस लोकमें सफलता प्राप्त होगी। ऐसा न करनेसे ही हजारों रुपया जो हमारा मुकद्दमे-मामलोंमें बृथा खर्च हो जाता है—बहुत कम हो जायगा और हजारों दिक्कतोंसे हम बचे रहेंगे। इसके अलावा, यदि हममें आपसमें कोई झगड़ा पड़े तो हम लोगोंको उचित है कि आपसमें ही फैसला कर लें। यह प्रथा हमारी बहुत पुरानी है। इसको फिर काममें लानेकी परमावश्यकता है। इतना तो मैं आप्रहके साथ कहूँगा कि हमारे मन्दिर आदिके धार्मिक झगड़े और बिरादरी सम्बन्धी झगड़े तो किसी हालतमें भी अदालतमें न जायँ और पञ्चायतों द्वारा तै हों, तो कहना ही क्या है। अगर पञ्चायतोंसे यह झगड़े तै न हो सकें, तो हमारी जातीय महासभाको बीचमें पड़ कर तै करवा देना चाहिए। ऐसा करनेसे जो हमारा समय और द्रव्य बचेगा,

उससे व्यापार और धार्मिक कामोंमें बहुत उन्नति हो सकेगी।

हमारे धनाढ्य भाइयोंको देशमें मिले इत्यादि कारखाने खोलकर अपनी और देशकी उन्नति करनी चाहिए।

हमारे भाइयोंको चाहिए कि स्वदेशी वस्त्रोंका व्यवहार ज्यादासे ज्यादा करें और स्वदेशी वस्त्र तथा अन्य स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार और व्यापार करके अपने लाभके साथ देशको भी लाभ पहुँचावें और देशोन्नतिमें सहायक हों। क्योंकि देशोन्नतिमें ही हमारी उन्नति पूर्णतया समाई हुई है।”

श्रीसम्मद शिखरजीके झगड़े पर दुःख प्रकट करते हुए आपने कहा—“हाय ! जिस तीर्थसे हम अपना उद्धार कर सकते हैं, उसीको हमने अपने डुबानेका साधन बना लिया। जिसके नामसे हमारे भाव निर्मल होने चाहियें, जिसका नाम लेनेसे हम पवित्र होते हैं और जिसका माहात्म्य हमारे शास्त्रोंमें यहाँतक लिखा है कि एक बार जो तनमनसे बन्दना कर ले, तो फिर नरक और तिर्यञ्च गति नहीं पाता, शर्म है कि वही हमारे लिये अशान्तिका घर हो—अफसोस ! जैन जातिके लिये इससे बढ़कर लांछनकी बात और क्या हो सकती है ? मैं इसका उलाहना अपने श्वेताम्बरी और दिगम्बरी दोनों भाइयोंको समान रूपसे दूँगा। जिस स्थानको स्पर्शकर और जिसका पूजनकर हम संसारसे पार उतरनेका भरोसा रखते हैं और जिसमें हमारा सांसारिक स्वार्थ कुछ भी नहीं है,—उसके लिये लड़ाई क्यों ? अगर यह लड़ाई इसी तरह चलती रही, तो इसका दुष्परिणाम हमीको भोगना पड़ेगा और यह स्वयंसिद्ध बात है कि दोकी लड़ाईमें हमेशा तीसरा लाभ उठा ही जाता है।

मेरा दोनों सम्प्रदायोंके अगुआ महा-शयोंसे सविनय निवेदन है कि आप लोग अब कोई ऐसा मार्ग निकालिये, जिससे यह भगड़ा शान्तिपूर्वक जल्दी ही तय हो जावे। अच्छा हो कि यह भगड़ा दोनों सम्प्रदायोंमें आपसमें तै हो जाय और दुनियाँ को हम बता दें कि जैसे हम लड़ना जानते हैं, वैसे मिलना भी जानते हैं। अगर हम किसी तरह तै नहीं कर सके तो देशके निष्पक्ष नेताओंके हाथमें यह मामला देकर निपटारा कराना चाहिये। आप देखते हैं कि अदालतोंके जज बैरिस्टरों आदिसे देशके कितने ही नेताओंकी योग्यता बहुत ऊँचे दरजे की है। और फिर अदालतोंमें हमको लाखों रुपया खाहा करना पड़ता है और यहाँ सिर्फ प्रार्थना पर ही मामलेका अन्त आ सकता है। अगर दोनों सम्प्रदायके भाई इसपर ध्यान दें तो यह बहुत अच्छा तरीका है।

भाइयो ! हजारों वर्षोंका हिन्दू मुसल-मानोंका आपसका भगड़ा तै हो गया— वे एक हो गये; और इस बीसवीं सदीमें ऐसी न मालूम कितनी असम्भव बातें सम्भव हो गईं। क्या ऐसे समयमें हम ही ऐसे दुर्भाग्यी रहेंगे जो अपनी शक्ति और पैसेको इस तरह आपसके भगड़ेमें व्यय करेंगे ! मैं चाहता हूँ कि यह खंडेल-वाल समा ही इस वर्षोंके भगड़ेको शान्त करके श्रेय प्राप्त करे। इससे बहुतसा द्रव्य जो इस भगड़ेके कारण मांसभक्षियों के जेबमें जाता है, रुककर हमारी जातीय उन्नतिमें लगेगा और समय व शक्तिका जो बचाव होगा वह अलग।

साहेबान ! फूट बहुत बुरी चीज है। इस फूटसे ही असंख्य घरों, कई गाँवों, कई प्रान्तों, और कई देशोंका नाश हो गया है और इस बुरी तरहसे नाश हुआ

है कि उसपर खयाल करते हृदय थर्राता है। सचमुच इस फूटने बहुतसे उन्नतोंको अवनत कर दिया है। आप इस फूटको अपनी जातिमेंसे बिलकुल निकाल दीजिये। हमारे नेताओंको चाहिये कि हमारे आपसके भगड़े अवश्यमेव आपसमें ही निपाट लें और आगे न बढ़ने दें। पंचायतोंकी हालत और उनके द्वारा निर्णयके सम्बन्धमें आपने कहा—“पंचायतोंमें प्रायः देखा गया है कि पंच लोग अक्सर किसी मामलेका विचार करते हुए पक्षपात, रिश्तेदारी और मान मुला-हिजेको न्याय और सत्यकी अपेक्षा ज्यादा काममें लाते हैं। यह बहुत बुरी बात है, इससे बाज वक्त कई अन्याय और अत्याचार हो जाते हैं और निर्बल पिस जाते हैं, इसीसे बखड़े उठते हैं। हमें चाहिये कि पंचायतके फर्शपर बैठकर देव, धर्म और गुरुकी साक्षीसे न्यायाधीशका सच्चा काम करें। और मनुष्योचित धर्म है कि हम इसे राजाज्ञाके समान मानें। खासकर हमारे मुखियाओंको तो इसका पूरा पूरा ध्यान अवश्य रखना चाहिये तभी वे सच्चे मुखिया हो सकते हैं। आवश्यकता है। इसलिये ये बातें हमको अवश्यमेव करनी चाहियें। हमारे त्यागी मुनियोंको चाहिये कि इसका जगह जगह उपदेश करें और पंचायत बनाकर जातिका सुधार करें। जैनियोंकी राजभक्तिका उल्लेख करते हुए आपने खेदके साथ प्रकट किया कि—“जैनियोंको कौंसिलमें जुदा हक न मिलनेसे हमारे कई भाइयोंका जी दुखा है। मगर अब तो कौंसिलके मोह नहीं रहे। क्योंकि देशके बहुत लायक आदमी भी अब उससे बाहर रहकर ही देशकी सेवा करना उपयोगी समझते हैं। समझें क्यों नहीं, जबकि आर्थिक स्वराज्य तक हमको नहीं दिया गया, जिसका कि देशके

व्यापारके साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है और हमारी कौमका जीवन ही व्यापारपर अवलम्बित है। हमें चाहिये कि राजभक्ति कायम रखते हुए देशसेवाके कामोंमें यथासाध्य खूब भाग लेते रहें।" और स्त्री-शिक्षापर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए आपने कहा:—

“स्त्रियाँ ही एक ऐसी चीज हैं, जिनकी गोदमें हमारे सब बड़े बड़े व्यापारी, राजा, चक्रवर्ती, गणधर यहाँतक कि तीर्थङ्कर भगवान् तक खेले हैं और ये सुशीला व गुणवती स्त्रियोंके ही हाथ हैं जो हमारी नेशन तककी तैयार करते हैं। यह बात हमको हमारी प्राचीन सतियोंके चरित्रोंको पढ़नेसे स्पष्ट प्रकट होती है।

“पुष्ट समाज चाहे कितनी भी उन्नति कर ले और महिलासमाज इसी अवनत दशामें पड़ा रहे तो हमारी उन्नति होना असम्भव है। जैसे पुख्ता नींवके बिना सुन्दर मकान भी नहीं ठहर सकता वैसे ही हमारी उन्नतिके लिए स्त्रीरूपी नींवको दृढ़ करना होगा। पर खेद है कि वर्त्तमान समयमें हमारा स्त्रीसमाज बहुत कुछ लक्ष्यसे गिर गया है। पुरुषोंकी तरह लड़कियों और स्त्रियोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध करना जातिका महान् कर्तव्य होना चाहिए। हमें स्त्रियोंको इस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिए कि जिससे वे आदर्श गृहिणी और आदर्श माताके कर्तव्योंको अच्छी तरह पालन कर सकें। हम उनको ऐसी शिक्षा नहीं देना चाहते, जिससे वे हमारे प्राचीन आदर्शसे गिरे और गृहस्थीके कामोंसे उनकी रुचि हट जाय। बल्कि स्त्रियोंके शिक्षालयोंमें धर्मकी पढ़ाईके साथ साथ सिलाई, व्यञ्जन, कला, स्वास्थ्य-रक्षा, बालचिकित्सा, गृहव्यवस्था आदि आदिकी शिक्षा भी स्त्रियोंको दी जानी चाहिए, ताकि वह सन्मानपात्र स्त्री

बन सकें। ऐसी सूरतमें हमारा प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम स्त्रियोंको पूर्ण सन्मानकी दृष्टिसे देखें। यह श्लोक तो आपने सुना ही होगा कि—“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।” और न यह श्लोक ही हम आदि पुराणके अभ्यासियोंको भूल जाना चाहिये कि “नारी गुणवती धत्ते स्त्री सृष्टेरग्रिमम् पदम्” प्राचीन समयमें भी स्त्रियोंकी मानमर्यादाका बहुत खयाल रक्खा जाता था और उनकी कतई अवहेलना नहीं की जाती थी, यह बात हमको नहीं भूलनी चाहिए। मगर अफसोस है कि आज हमारी स्त्रियोंकी, बालविधवाओंकी, तरुण विधवाओंकी और असहाय वृद्ध नारियोंकी क्या दुर्दशा है! प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य होना चाहिए कि जो स्त्रीजाति उसके लिए मातृरूपमें, भार्यारूपमें, भग्निरूपमें, पुत्रीरूपमें बड़े स्नेहके साथ स्वार्पण करती है, उसका प्रतिफल भक्तिभावसे किसी न किसी रूपमें सच्चे हृदयके साथ अवश्य देवें। यह तो हुई आम स्त्रियोंकी बात। अब मैं खास विधवाओंकी हालतपर विचार करता हूँ।

विधवाओंकी हालत बहुत शोचनीय है। समाजमें कई ऐसी असहाय विधवाएँ हैं जो बड़े दुःखके साथ सदाचारपूर्वक अपना जीवन बिताती हैं। कितनी ही विधवाओंका तो निर्वाह ही बड़ी कठिनतासे होता है और कितनीको अपने कुटुम्बमें ही बहुत दुःख भोगना पड़ता है, सो आप साहबोंसे छिपा नहीं है। अब जरूरत है कि वे अपना वैधव्यजीवन धर्मपूर्वक निभा सकें—ऐसे उचित आयोजन इनके लिए अवश्य होने चाहिए। वरना इस कठिन समयमें ये अपने आदर्शसे बहुत गिर जायँगी। विधवाओंके लिए ऐसे विधवाश्रम हों और उनमें ऐसी

शिक्षा दीक्षा होनी चाहिए कि जो इनके जीवनको सदाचारपूर्वक निबाहनेमें पूरी सहायता दे। जैनसमाजमें आजकल अभ्यापिकाओंकी बहुत कमी है, और इस कमीके कारण ही कई जगह कन्या पाठ-शालाएँ नहीं खोली गई हैं। क्या ही अच्छा हो कि हमारी विधवा बहिनोंको ऐसे कामोंके लिए तैयार कर उनसे जातिको उन्नतिके काम लिये जायँ, और पढ़ानेके बाद वे अपना शेष जीवन ज्ञान ध्यानमें व्यतीत करें।

“मेरी तुच्छ सम्मतिसे यदि हमारी विधवा बहिनोंको महात्मा गान्धीजीका चर्खा या हाथके लूमोंपर कपड़ा बनाना सिखाया जाय, तो बहुत उपयोगी हो। इससे इनके लिए एक प्रकारका काम भी हो जायगा और ये दूसरोंके लिए भाररूप न होकर स्वयं अपने पैरोंपर खड़ी होनेके योग्य हो जावेंगी। जैसा कि मैंने अपने व्याख्यानमें ऊपर गुप्तदानका जिक्र किया है, वह ज्यादासे ज्यादा हमारी इन्हीं बहिनोंके काममें आना चाहिए और यही उनकी सबसे ज्यादा हकदार हैं। हमारा फर्ज है कि इस तरह इनके जीवनको सुगम बनाते हुए इनको अपने पुराने आदर्शपर कायम रखते हुए गिरनेसे बचावें। स्त्रियोंको नसिंगकी शिक्षा भी दी जाय, तो वे रोगियोंकी सेवामें बहुत सहायक होंगी।

अन्तमें सेठजीने निम्नलिखित सूचनाएँ देकर अपने व्याख्यानको समाप्त किया है—

(१) क्या स्त्री क्या पुरुष हम सबको प्रति दिन जिन भगवान्के दर्शन करने चाहियँ।

(२) स्वाध्याय जितना ज्यादासे ज्यादा कर सकें, अवश्य करना चाहिए।

(३) यथासाध्य प्रति दिन आलोचना और सामयिक प्रतिक्रम भी करना

चाहिए। और जहाँतक हो सके, गृहस्थके छः कर्म प्रति दिन पालें, तो अच्छा है।

(४) हम लोगोंमें व्याहशादी जैन-विवाह-पद्धतिके अनुकूल अवश्य होना चाहिए।

(५) सोलह-संस्कार भी यथासाध्य किये जायँ, तो अच्छा है।

(६) जातिका कोई बच्चा भूखा और बेपढ़ा-लिखा न रहे। इसके लिए ज्यादासे ज्यादा ध्यान देना अत्यन्तसे ज्यादा आवश्यक है।

(७) हम लोगोंका खानपान भी बहुत शुद्धतापूर्वक शास्त्रानुकूल होना चाहिए।

(८) नवयुवकोंमें बीड़ी सिगरेट और अन्य मादक पदार्थोंका सेवन रोकनेके लिए उचित आयोजन करना चाहिए क्योंकि इनसे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारकी हानियाँ होती हैं।

(९) हमारे दिगम्बर जैन समाजमें जैसवाल, बागडिया, अग्रवाल आदि जितनी बिरादरियाँ हैं, उनके साथ अपनी जातीय मर्यादा कायम रखते हुए, उनको अपना सहधर्मी भाई समझते हुए उनके साथ भी हमको बहुत सहानुभूतिका बर्ताव करना चाहिए। अन्दरूनी हम लोग इस प्रकार जुदे होते हुए भी धार्मिक कार्योंमें तो हमको ऐसे शरीक हो जाना चाहिए कि बाहरवाले भी यह जानें कि हम सारे दिगम्बरी एक समाजमें हैं।

(१०) अपनी जातिका प्राचीन गौरव और महत्व आदि बतानेके लिए योग्य पुरुषों द्वारा एक बहुत उत्तम और सर्वाङ्ग-पूर्ण जातिका इतिहास अवश्य तैयार होना चाहिए।

(११) विधवा-विवाह करना और जाति-व्यवस्था आदि तोड़ना क्यों हानिकर है और इनकी आवश्यकता क्यों नहीं है, इत्यादि विषयों पर योग्यता और

युक्तिपूर्वक अच्छे अच्छे ट्रेकू निकालकर समाजमें उनका खूब प्रचार किया जाना चाहिए ।

कुछ सामयिक बातें ।

(ले० श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी ।)

१-अन्य जातियोंकी कन्यायें लेनेका प्रस्ताव ।

पाठकोंने दिगम्बर जैन समाजकी दूमड़ जातिका नाम अवश्य सुना होगा । स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीने अपने जन्मसे इसी जातिको पवित्र किया था । गुजरात, मालवा, बागड़ और दक्षिणके कुछ जिलोंमें इस जातिके बहुसंख्यक जैनी रहते हैं । जैन डिरेक्टरीके अनुसार इस जातिकी जनसंख्या २०६३४ है । अन्य जातियोंके समान यह भी बीसा और दस्सा इन दो उपभेदोंमें बँटी हुई है । इसमें कन्याओंकी संख्या कम है, इस कारण विवाहके योग्य युवाओंकी संख्या बहुत बढ़ती जाती थी । हमें सूरतके एक धनी और विचारशील सज्जनके द्वारा अभी मालूम हुआ है कि सूरतकी दूमड़-बिरादरीने कितने ही वर्ष पहलेसे ऐसा प्रस्ताव पास कर रक्खा है कि जिस विवाह योग्य पुरुषको अपनी जातिमें योग्य कन्याकी प्राप्ति न हो सके, उसे अधिकार है कि वह अन्य किसी ऐसी जैन या अजैन जातिकी कन्याके साथ अपना विवाह कर ले जिसके साथ भोजनादिका सम्बन्ध हो और ऐसी दशामें वह जातिच्युत नहीं समझा जायगा । इस प्रस्तावके अनुसार कुछ दूमड़ भाइयोंने इतर जातिकी कन्याओंके साथ विवाह किया भी है और उनका व्यवहार जाति-

में उसी तरह बेरोक-टोक चला जा रहा है । बीसा और दस्सा दूमड़ोंमें पारस्परिक सम्बन्ध तो अब और भी बहुतायतसे होने लगा है । स्वयं सेठ माणिकचन्दजीके परिवारमें अनेक दस्सा कन्यायें व्याही जा चुकी हैं । अभी पिछले ही वर्ष सेठ माणिकचन्दजीके एक भतीजेकी शादी शोलापुरके एक दस्सा-कुटुम्बमें हुई है । और यह बात तो अभी बिलकुल ताजी है कि पं० अर्जुनलालजी सेठी (खण्डेलवाल) की कन्या भी शोलापुरके एक दूमड़-कुटुम्बमें व्याही गई है और उसका व्यवहार यथापूर्व जा रहा है । श्वेताम्बरियोंके साथ भी इस जातिमें कुछ विवाह हुए हैं ।

इसी तरह गुजरातमें मेवाड़ा नामकी एक दिगम्बर जैन जाति है । इसकी जनसंख्या २१६० है । स्वर्गीय सेठ लल्लुभाई प्रेमानन्द एल. सी. ई. इसी जातिके थे । इस जातिमें अबतक ७५ कन्यायें दूसरी जातियोंकी व्याही जा चुकी हैं और जातिने उनका अनुमोदन किया है । अहमदाबादकी कई श्वेताम्बर जैन जातियोंमें भी इस तरहके विवाह प्रचलित हो गये हैं ।

खण्डेलवाल जातिकी उन्नतिका बीड़ा उठानेवाली खण्डेलवाल महासभाको इन बातों पर विचार करना चाहिए, यदि वास्तवमें वह अपनी जातिका कल्याण करना चाहती है तो । वह देखे कि बड़नगर, इन्दौर, लश्कर, आगरा आदि स्थानोंमें अविवाहित खण्डेलवाल युवाओंकी संख्या कितनी है और उनके चरित्रकी क्या दशा है । उनमेंसे कितने लोगोंने जातिकी और गैरजातिकी विधवाओंको घरोंमें डाल रक्खा है और यह जाहिर कर रक्खा है कि हमने इन्हें रसोई बनानेके लिए रख छोड़ा है, और कितने

विवाह न होनेके कारण परस्त्री तथा वेश्यागामी बन गये हैं। वह यह भी देखे कि जिन लोगोंने किसी तरह अपने विवाह दो दो चार चार हजार रुपये देकर कर लिये हैं, वे कर्ममें किस तरह जकड़े हुए हैं और इसके कारण उनका चरित्र कितना उन्नत हो गया है! यदि उससे और कुछ नहीं बन सकता है तो वह एक बार गणना करके यही हिसाब लगा देखे कि हमारी जातिमें विवाहयोग्य अवस्थाके कुमारों और कुमारिकाओंकी संख्यामें कितना अन्तर है। और फिर सोचे कि अपनी रक्षाके लिए उसे अन्य जातियोंके साथ विवाहसम्बन्ध स्थापित करनेकी कितनी आवश्यकता है।

यह निश्चित है कि खण्डेलवाल जातिमें कन्याओंकी बहुत कमी है और मुख्यतः इसी कारण इस जातिमें अविवाहित युवकोंकी संख्या बढ़ रही है; फिर भी खण्डेलवाल महासभाके संस्थापक पं० धन्नालालजीने कलकत्तेके अधिवेशनमें बहुविवाहका प्रतिपादन किया था। जहाँ एक एक कुमारके बाँटमें एक एक कन्या भी नहीं पड़ती है, वहाँ वे चाहते हैं कि कुछ मनचले धनी लोग दो दो चार चार स्त्रियाँ भी चाहें तो रख लें और इस तरह वे और भी सैकड़ों युवकोंको विवाहसे वंचित रखें।

बेचारे अविवाहितोंकी दशा बड़ी कष्टाजनक है। न तो वे जातिमें ही कन्यायें पाते हैं और न गैर जातिकी ओर ही ताक सकते हैं। न उनके हककी रक्षाके लिए बहुविवाहकी और वृद्धविवाहकी ही प्रथायें रोकी जा सकती हैं और न विधवा-विवाहकी ही उन्हें इजाज़त दी जाती है। बस, उनके लिए केवल एक ही मार्ग खुला है और वह यह कि किसीको रसोई-दारिन या नौकरानी बनाकर रख

लेना और उसके साथ पापमय जीवन व्यतीत करते हुए वंश और जातिका मुख उज्ज्वल करना! इसके लिए खंडेलवाल जातिने स्वाधीनता भी पूरी दे रखी है।

एक ओर तो खण्डेलवाल जातिके उद्धारका बीड़ा उठानेवाले कहते हैं कि धर्मशास्त्र विधवा-विवाह करनेकी आज्ञा नहीं देते, इसलिए वह निषिद्ध है; और दूसरी ओर जब धर्मशास्त्रोंमेंसे यह बतलाया जाता है कि उनके अनुसार एक वर्णकी विभिन्न जातियोंका ही नहीं, किन्तु विभिन्न वर्णोंका भी विवाह अनुचित नहीं है, तब जातिके वर्तमान नियमोंकी दुहाई दी जाती है! ऐसी दशामें समझमें नहीं आता कि धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा विशेष मान्य है या जातिके नियमोंकी।

हमारी समझमें दूमड़ और मेवाड़ा भाइयोंने अपनी जातिकी रक्षा करनेके लिए जो उपाय किया है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है और उसका अनुकरण सभी जैन जातियोंको करना चाहिए और उन जातियोंके लिए तो इससे अच्छा राम-बाण उपाय मिल ही नहीं सकता जिन जातियोंमें कन्यायें दुर्मूल्य हो रही हैं।

२-नागपुर प्रान्तके खण्डेलवाल ।

गत वर्ष नागपुर प्रान्तीय खण्डेलवाल जैनसभाके मन्त्री श्रीयुत सेठ चैनसुखजी छावड़ाने अपने प्रान्तकी मनुष्यगणना बहुत ही सावधानीसे की थी और उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित की थी। हम अपने पाठकोंका ध्यान उसकी नीचे लिखी हुई संख्याओंकी ओर आकर्षित करते हैं:—

पुरुष ५६६

विवाहित	२२६
कुँवारे १४ वर्षके भीतरके	१५१
कुँवारे १४ वर्षके ऊपरके	१११
पत्नीरहित (विधुर)	७८

स्त्रियाँ ५०२		
विवाहितार्ये	...	२२३
कन्यार्ये ११ से कमकी	...	१२६
कन्यार्ये ११ से अधिककी	...	५
विधवार्ये	...	१४५

इन अंकोंसे मालूम होगा कि जहाँ ५६६ पुरुष हैं वहाँ स्त्रियाँ केवल ५०२ हैं; अर्थात् स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे लगभग १२ प्रति सैकड़े योंही कम है। इसके सिवा सारी कन्याओंकी संख्या १३४ है, परन्तु कुँवारोंकी संख्या २६२ है। अर्थात् सारी कन्याओंके ब्याहे जानेपर भी लगभग १२८ कुँवारे ऐसे बच रहेंगे जिनके विवाह, उक्त प्रान्तमें, किसी तरह हो ही नहीं सकेंगे—उनके लिए कन्यार्ये मिलही नहीं सकेंगी! ५०२ स्त्रियोंमेंसे १४५ स्त्रियाँ विधवा हैं! यह संख्या कितनी भयानक है! सौके पीछे २८ से अधिक स्त्रियाँ विधवा हैं यदि इसमेंसे ८ स्त्रियाँ अधिक उम्रकी समझली जायँ तो प्रति सैकड़े ० स्त्रियाँ तो अवश्य ही वैधव्यका असह्य दुःख भोग रही हैं।

अच्छा हो यदि खण्डेलवाल महासभा भी इसी तरह समस्त खण्डेलवाल जैनियोंकी मनुष्य-गणना प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करे। और फिर इसके बाद विचार करे कि अपनी रक्षाके लिए उसे क्या करना उचित है। जातिके मसले जातीय दशापर विचार करनेसे ही हल होंगे। जो दशा नागपुर प्रान्तीय खण्डेलवालोंकी है यदि वही दशा सारी खण्डेलवाल जातिकी है—और हमारा विश्वास है कि वह लगभग वैसी ही होगी—तो खण्डेलवालोंको अपनी जातिकी और उसके चरित्रकी रक्षा करनेके लिए हमारी रायमें केवल यही उपाय शेष रह जाता है कि वे या तो अन्य जातिकी कन्याओंको लेना प्रारम्भ कर दें और या विधवा-विवाहको

जायज करार दें। पहला उपाय धर्मशास्त्रानुमोदित है और दूसरा अभी विवादग्रस्त है। जबतक दूसरा उपाय विवादग्रस्त है तबतक पहलेका ग्रहण कर लेनेमें कमसे कम विचारशील खण्डेलवालोंको तो हमारी समझमें कोई एतराज नहीं होना चाहिए।

३-गिरजाघरोंकी बिक्री।

जैसे हमारे यहाँ मन्दिरोंके बनानेकी धुन है वैसे ही एक समय विदेशोंमें थी। वहाँ ज़रूरत हो या नहीं, इसका खयाल किये बिना, पुण्य और नाम कमानेके लिए उपासनामन्दिर या गिरजाघर बनाये जाते थे, यद्यपि अब ईसाई देशोंमें पहले जैसी धर्मभावनायें नहीं रही हैं, इसलिए ये उपासनामन्दिर बहुत नहीं बनते, फिर भी जो पहले बने हुए हैं और इन दिनों भी जो थोड़े बहुत बन जाते हैं, उन्हींके मारे लोग परेशान हैं। अभी लन्दन शहरसे एक खबर आई है कि वहाँ प्रार्थनामन्दिर इतने अधिक हैं और उनमें आनेवालोंकी संख्या इतनी कम होती है कि उनमें से १७ गिरजाघर गिरा दिये जायँगे और वह जगह २२ करोड़ रुपयोंमें बेच दी जायगी! इस समाचारसे पाठक समझ सकेंगे कि संसारमें अब उपयोगिता और अनुपयोगिताका खयाल कितना अधिक बढ़ गया है और धार्मिक-क्षेत्रोंमें भी अब उसकी घुस-पैठ किस ढंगसे हो रही है। हम लोगोंको भी इससे कुछ सीखना चाहिए। जो लोग ग्रंथाधुन्ध मन्दिरोंकी संख्या बढ़ा रहे हैं और इसीको धर्मप्रभावना समझ रहे हैं, उन्हें सावधान हो जाना चाहिए। भारतके विचार संसारमें भी बड़े बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। वह दिन अधिक दूर नहीं दिखलाई देता जब कि मन्दिरोंकी यह ज्यादाती

लन्दनके समान यहाँ भी उपयोगिता-
वादियोंकी नज़रमें चुभने लगेगी ।

कुछ ऐतिहासिक बातें ।

[लेखक—पं० नाथूरामजी प्रेमी ।]

१-शाकटायन और पाल्यकीर्ति ।

जैनहितैषी भाग १२ अंक ७-८ में हमने 'शाकटायनाचार्य' के सम्बन्धमें एक लेख प्रकाशित किया था और उसमें वादिराजसूरिका पार्श्वनाथचरित्रके नीचे लिखे श्लोकके आधारसे भी यह सिद्ध किया था कि शाकटायनका ही दूसरा नाम पाल्यकीर्ति था—

कुतस्तया तस्य सा शक्तिः

पाल्यकीर्तेर्महौजसः ।

श्रीपदश्रवणं यस्य

शाब्दकान्कुरुते जनान् ॥

इसका अर्थ यह है कि उस महा-
तेजस्वी पाल्यकीर्तिकी शक्तिका क्या वर्णन
किया जाय जिसके श्रीपदके सुनते ही
लोग शाब्दिक या व्याकरणज्ञ हो जाते
हैं । इसपर विचार करते हुए हमने उस
श्लोकमें लिखा था—“अमोघ वृत्तिका
प्रारम्भ 'श्रीवीरममृतं ज्योतिः' आदि
मंगलाचरणसे होता है । वादिराजसूरि
इस मंगलाचरणके 'श्री' पदपर ही लक्ष्य
करके कहते हैं कि पाल्यकीर्ति या शाक-
टायनके शब्दानुशासनका प्रारम्भ करते
ही लोग वैयाकरण हो जाते हैं । अर्थात्
जो इस व्याकरणका मंगलाचरण ही सुन
पाते हैं वे इसे पढ़े बिना और वैयाकरण
बने बिना नहीं रहते । इससे यह भी सिद्ध
हो जाता है कि उक्त 'श्रीवीरममृतं ज्योतिः'
आदि श्लोकके अथवा अमोघवृत्तिके कर्त्ता
भी पाल्यकीर्ति (शाकटायन) ही हैं ।”

यद्यपि हमें इस विषयमें जरा भी
सन्देह नहीं था कि पाल्यकीर्ति और शाक-
टायन एक ही हैं और इसकी पुष्टिमें
हमारे लेखमें और भी कई प्रमाण दिये
गये हैं, परन्तु अभी हाल हीमें हमें जो
प्रमाण मिला है, उससे यह बात बिल-
कुल निर्विवाद हो जाती है ।

उक्त पार्श्वनाथचरित काव्यकी श्री-
शुभचन्द्राचार्यकृत एक 'पंजिकाटीका' है
जो यहाँके स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके
ग्रन्थभण्डारमें मौजूद है । उसमें उक्त
श्लोकके पदोंका अर्थ इस प्रकार किया
है—“तस्य पाल्यकीर्तेः । महौजसः । श्री-
पदश्रवणं । श्रिया उपलक्षितानि पदानि
शाकटायनसूत्राणि तेषां श्रवणं आक-
र्षणं ॥२५॥” इससे स्पष्ट हो जाता है कि
श्रीशुभचन्द्राचार्य भी पाल्यकीर्तिको शाक-
टायनसूत्रोंका कर्त्ता मानते थे और 'श्री-
वीरममृतं ज्योतिः' आदि अमोघवृत्तिवाले
मंगलाचरणके कर्त्ता भी उनके मतसे वे
ही थे ।

२-सिद्धसेनके 'सम्मति-तर्क' पर दिगम्बराचार्यकृत टीका ।

पार्श्वनाथचरितके कर्त्ता वादिराज-
सूरिने प्राचीन कवियोंको नमस्कार करते
हुए लिखा है—

नमः सन्मतये तस्मै भवकूपनिपातिनां ।

सन्मतिर्विवृता येन सुखधामप्रवेशिनी ॥२२

अर्थात् उस सन्मति नामक आचार्य-
को नमस्कार करता हूँ जिसने भवकूपमें
पड़े हुए लोगोंके लिए सुखधाममें पहुँ-
चानेवाली सन्मतिको विस्तृत किया,
अर्थात् सन्मति नामक ग्रन्थ पर टीका
लिखी ।

हमारी समझमें यह सन्मति ग्रन्थ
और कोई नहीं, वही 'सम्मति' या 'सम्मति
तर्क' या 'सम्मति-प्रकरण' है जो आचार्य

सिद्धसेनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है और जिसपर श्वेताम्बराचार्य मल्लवादि और अभयदेव-सुरिकी टीकायें हैं। इस उल्लेखसे जान पड़ता है कि दिग्म्बर ग्रन्थकारोंमें उस समयतक सिद्धसेनके ग्रन्थोंका प्रचार था और इतना था कि उन्होंने उनपर टीकायें भी लिखी थीं। इसी लिए तो हरिवंशपुराणके कर्त्ता और आदिपुराणके कर्त्ताने उनकी अतिशय प्रशंसा की है और उन्हें महान् तार्किक बतलाया है।

पार्श्वनाथचरितके इस उल्लेखसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि हमारे ग्रन्थोंमें जिन सिद्धसेनका उल्लेख मिलता है वे और श्वेताम्बरोंमें जिन सिद्धसेन दिवाकरके ग्रन्थोंका प्रचार है वे दोनों एक ही हैं—

श्रवणवेल्लोलकी मल्लिषेण-प्रशस्तिमें सुमतिदेव नामक एक आचार्यका उल्लेख है जिन्होंने 'सुमतिसप्तक' नामका कोई ग्रन्थ बनाया था:—

सुमतिदेवममुं स्तुत येन वः

सुमतिसप्तकमाप्तया कृतम् ।

परिहृतापदतत्त्वपदार्थिनां

सुमतिकोटिविवर्ति भवतिहृत् ॥

जान पड़ता है, ये 'सुमतिदेव' और सम्मति-टीकाके कर्त्ता 'सन्मति' एक ही होंगे। 'सन्मति' और 'सुमति' प्रायः एकार्थवाची शब्द हैं और कविगण अकसर नामोंमें भी पर्यायवाची शब्दका प्रयोग कर दिया करते हैं, जैसे 'देवसेन' और 'सुरसेन' लिखा है। सन्मतिकी टीकाके कर्त्ताका नाम एक कविके लिए 'सुमति' की जगह 'सन्मति' लिखना ही विशेष आकर्षणीय मालूम होगा। अतः वादि-राजने उन्हें सुमतिदेव न लिखकर 'सन्मति' ही लिखा जान पड़ता है।

यदि हमारा यह अनुमान ठीक है तो सुमतिदेवके बनाये हुए दो ग्रन्थ होने

चाहिएँ—एक 'सम्मति-विवरण' और दूसरा 'सुमतिसप्तक'। ये दोनों ही ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इनका पता लगाना चाहिए।

३-शिवकोटिकी 'रत्नमाला' ।

आचार्य जिनसेनने आदिपुराणके प्रारम्भमें 'शिवकोटि' नामके एक आचार्यका स्मरण किया है; और उनके उल्लेखसे मालूम होता है कि सुप्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ 'भगवती आराधना' के वे कर्त्ता थे—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयं ।

मोक्षमार्गं स पायात्तः शिवकोटिर्मुनीश्वरः ॥

स्वयं 'भगवती आराधना' ग्रन्थमें उनका नाम 'शिवार्य' दिया है। संभवतः 'शिवार्य' और 'शिवकोटि' एक ही कर्त्ताके नामके नामान्तर हैं। यद्यपि हस्ति-मल्लकृत विक्रान्त कौरवीय नाटकके उल्लेखसे इन नामोंके विषयमें कुछ सन्देह हो जाता है क्योंकि उसमें समन्तभद्रके दो शिष्य बतलाये हैं—एक 'शिवकोटि' और दूसरे 'शिवायन'।

अभी हाल हीमें हमें संपादक जैन-हितैषीके प्रयत्नसे एक छोटेसे ग्रन्थकी प्राप्ति हुई है जिसका नाम 'रत्नमाला' है और जिसके कर्त्ताका नाम 'शिवकोटि' लिखा है। इसकी एक प्रति कनड़ी लिपिमें आराके जैनसिद्धान्त-भवनमें मौजूद है। कुम्भोज (कोल्हापुर) के श्रियुक्त पं० नाना रामचन्द्रनागने उसकी एक कापी देवनागरी लिपिमें कराकर हमारे पास भेजी है। इसके लिए हम नाग महाशयके अतिशय कृतज्ञ हैं। इस रत्नमालामें संस्कृतके ६७ अनुष्टुप् श्लोक हैं। मंगलाचरण इस प्रकार है:—

सर्वज्ञं सर्ववागीशं वीरं मारमदापहं ।

प्रणमामि महामोह शान्तये मुक्ताप्तये ॥१॥

सारं यत्सर्वसारेषु वंद्यं अद्वंदितेष्वपि ।

अनेकान्तमयं वंदे तदर्हद्वचनं सदा ॥२॥

सदावदातमहिमा सदाध्यानपरायणः ।
सिद्धसेनमुर्निजायाद्भट्टारक पदेश्वरः ॥३॥
स्वामिसमन्तभद्रो मे
हनसे (ऽहर्निशं) मानसेऽनघः ।
तिष्ठताजिनराजोद्य-
च्छाशनाम्बुधि चन्द्रमा ॥४॥

इसके तीसरे श्लोकमें सिद्धसेन आ-
चार्यका भी उल्लेख किया गया है। यदि
सचमुच ही यह ग्रन्थ शिवकोटिका है,
तो कहना होगा कि सिद्धसेनके सम्बन्धमें
आदिपुराण और हरिवंशपुराणके सिवाय
यह तीसरा प्राचीन उल्लेख है। यह उसी
समयका उल्लेख है जब कि सिद्धसेन-
सूरिके ग्रन्थोंका हमारे यहाँ प्रचार था।

ग्रन्थके अन्तमें नीचे लिखा श्लोक है:-

यो नित्यं पठति श्रीमान्
रत्नमालामिमांपरां ।
स शुद्धभावनो नूनं
शिवकोटित्वमाप्नुयात् ॥६७॥

इसका नीचे लिखा श्लोक विशेष
ध्यान देने योग्य है; क्योंकि बिलकुल
इसी प्रकारका श्लोक यशस्तिलक* चम्पू-
में भी आया है† ।

सर्वमेवविधिर्जैनः
प्रमाणं लौकिकस्सतां ।
यत्र न व्रत इानिः
यात्सम्यक्त्वस्य च खण्डनं ॥६६॥

ग्रन्थमें सम्यक्त्व, अणुव्रत, गुणव्रत,
शिचाव्रत, मूलगुण, प्रतिमा, आदि बातों-

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रत दूषणं ।
सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः । यश० ।
† ब्रह्मसूरिके प्रतिष्ठातिलक नामक त्रैवांगिकाचार ग्रन्थमें
भी इसी आशयका निम्न श्लोक पाया जाता है :-
सर्वोऽपि लौकिकाचारो जैनानामविगर्हितः
यत्र दर्शनहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥

सम्पादक ।

का फुटकर उपदेश है। माणिकचन्द्र-
ग्रन्थमालामें इस ग्रन्थके प्रकाशित करने-
का विचार हो रहा है।

४-रविषेणका वरांगचरित ।

आचार्य रविषेणका इस समय केवल
पद्मचरित (पद्मपुराण) नामक ग्रन्थ ही
उपलब्ध है; परन्तु हरिवंशपुराणके प्रारम्भ-
के नीचे लिखे श्लोकोंसे मालूम होता है
कि 'वरांगचरित' नामका ग्रन्थ भी उनका
बनाया हुआ था। वे श्लोक ये हैं:-
कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिकाव्यमयीलोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥३४
वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद्राढ मनुरागं स्वगोचरम् ॥३५

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उद्योतनसूरि
नागके एक प्रसिद्ध विद्वान् हो गये हैं।
उन्होंने 'कुवलयमाला' नामका प्राकृत
ग्रन्थ शक संवत् ७०० में बनाकर समाप्त
किया है। उस ग्रन्थमें प्राचीन कवियोंकी
प्रशंसा करते हुए आचार्य रविषेण और
उनके पद्मपुराण और वरांगचरित ग्रन्थों-
का भी उल्लेख किया गया है:-

जेहिं कए रमणिज्जे
वरंग-पउमाणचरिय विव्थारे ।

कह व ण सलाहणिज्जे
ते कइणो जडिय रविसेणो ॥

अर्थात् जिन्होंने रमणीय वरांगचरित
और पद्मचरितका विस्तार किया, वे
रविषेण कवि किसके द्वारा श्लाघनीय या
सराहना किये जाने योग्य नहीं हैं।

इसी ग्रन्थमें प्राकृत पउमचरिय (पद्म-
चरित) के कर्ता विमलसूरिका उल्लेख है:-

जारासियं विमलंको विमलं
को तारिसं लहइ अत्थं ।

अमयमइयं च सरसं
सरसंचिय पाइयं जस्स ॥

अर्थात् जैसी कीर्ति विमलांक (पउम-चरिय) ने पाई, वैसी विमल कीर्ति कौन पा सकता है जिसकी प्राकृत अमृतमयी और सरस है ।

यह प्रायः निश्चित है कि पद्मपुराण विमलसूरिके प्राकृत पउमचरियका ही कुछ विस्तृत संस्कृत अनुवाद है और उद्योतनसूरिको इन दोनों ही ग्रन्थोंका परिचय था । ऐसी दशामें उन्हें यह भी मालूम होगा कि पउमचरियका ही विस्तृत अनुवाद रविषेणका पद्मचरित (पद्म-पुराण) है । शायद इसी लिए उन्होंने 'वरंग-पउमाण-चरिय-वित्थारे' पदमें 'वित्थार' शब्द देकर यह व्यक्त किया है कि पद्मचरित पउमचरियका ही विस्तार है ।

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक—श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी ।]

(गताङ्कसे आगे ।)

पूज्यपाद-चरित्र ।

अन्य बड़े बड़े आचार्योंके समान पूज्यपादकी जीवनसम्बन्धी घटनाओंसे भी हम अपरिचित हैं । उनके जाननेका कोई साधन भी नहीं है । सिवाय इसके कि वे एक समर्थ आचार्य थे और हमारे उपकारके लिए अनेक ग्रन्थ बनाकर रख गये हैं, उनका कोई इतिहास नहीं है । आगे हम कन्नड़ी भाषाके एक पूज्यपाद चरितका सारांश देते हैं, जिससे उन लोगोंका मनोरञ्जन अवश्य होगा, जो अपने प्रत्येक महापुरुषका जीवनचरित-चाहे वह कैसा ही हो—पढ़नेके लिए उत्कण्ठित रहते हैं । विद्वान् पाठक इससे यह समझ सकेंगे कि सत्यताकी जरा भी परवा न करनेवाले और साम्प्रदायिकता-

के मोहमें बहनेवाले लेखक किस तरह तिलका ताड़ बनाते हैं ।

इस चरितको चन्द्रय्य नामक कवि-ने दुःषम कालके परिधावी संवत्सरकी श्राश्विन शुक्ल ५, शुक्रवार, तुलालग्रमें समाप्त किया है । यह कवि कर्नाटक देशके मलयनगरकी 'ब्राह्मणगली' का रहने-वाला था । वत्सगोत्री और सूर्यवंशी ब्राह्मण बम्मणाके दो पुत्र हुए, सातप्पा हुब्ब ब्रह्मरस और विजयप्पा । विजयप्पाके ब्रह्मरस और ब्रह्मरसके देवप्पा हुआ । इसी देवप्पाकी कुसुमम्मा नामक पुत्रीसे कवि चन्द्रय्यका जन्म हुआ था ।

“कर्नाटक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ । ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपूज्य बतलाया, इस कारण उसका नाम पूज्यपाद रक्खा गया । माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार कर लिया । भट्टजीके सालेका नाम पाणिनि था । उसे भी उन्होंने जैनी बननेको कहा; परन्तु प्रतिष्ठाके खयालसे वह जैनी न होकर मुडीगुंडग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया । पूज्यपादकी कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्टको व्याही गई । गुणभट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ ।

पूज्यपादने एक बगीचेमें एक साँपके मुँहमें फँसे हुए मेंडकको देखा । इससे उन्हें वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये ।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे । वह पूरा न होने पाया था कि उन्होंने अपना मरणकाल निकट आया जान लिया । इससे उन्होंने पूज्यपादसे जाकर कहा कि इसे आप पूरा कर दीजिए । उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया ।

पाणिनि दुर्ध्यानवश मरकर सर्प हुए ।

एक बार उन्होंने पूज्यपादको देखकर फूत्कार किया, इसपर पूज्यपादने कहा, विश्वास रखो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूँगा। इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूरा कर दिया।

इसके पहले वे जैनेन्द्र व्याकरण, अर्हत्प्रतिष्ठासूत्र, और वैद्यक, ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे।

गुरुभट्टके मर जानेसे नागार्जुन अतिशय दरिद्र हो गया। पूज्यपादने उसे पद्मावतीका एक मन्त्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी। पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्धरसकी बनस्पति बतला दी।

इस सिद्धरससे नागार्जुन सोना बनाने लगा। उसके गर्वका परिहार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली बनस्पतिसे कई घड़े सिद्धरस बना दिया। नागार्जुन जब पर्वतोंको सुवर्णमय बनाने लगा, तब धरणेन्द्र-पद्मावतीने उसे रोका और जिनालय बनानेको कहा। तदनुसार उसने एक जिनालय बनवाया और पार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापित की।

पूज्यपाद पैरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेहक्षेत्रको जाया करते थे। इस समय उनके शिष्य वज्रनन्दिने अपने साथियोंसे झगड़ा करके द्राविड़ संघकी स्थापना की।

नागार्जुन अनेक मन्त्र, तन्त्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत प्रसिद्ध हो गया। एक बार दो सुन्दरी स्त्रियाँ आईं जो गाने नाचनेमें कुशल थीं। नागार्जुन उनपर मोहित हो गया। वे वहीं रहने लगीं और एक दिन अचानक पाकर उसे मारकर और उसकी रसगुटिका लेकर चलती बनीं।

पूज्यपाद मुनि बहुत समयतक योगाभ्यास करते रहे। फिर एक देवके धिमान-

में बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की। मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों कर ली। इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें आकर समाधिपूर्वक मरण किया।”

इस लेखके लिखनेमें हमें श्रद्धेय मुनि जिनविजयजी और पं० बेहचरदास जीवराजजीसे बहुत अधिक सहायता मिली है। इसलिए हम उक्त दोनों सज्जनोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। मुनि महोदयकी कृपासे हमको इस लेख-सम्बन्धी जो सामग्री प्राप्त हुई है, वह यदि न मिलती तो यह लेख शायद ही इस रूपमें पाठकोंके सामने उपस्थित हो सकता।

पूना—भाद्र कृष्ण ६ संवत् १९७७ वि०

परिशिष्ट ।

[भगवद्वाग्वादिनीका विशेष परिचय ।]

इसके प्रारम्भमें पहले 'लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य' आदि प्रसिद्ध मंगलाचरणका श्लोक लिखा गया था। परन्तु पीछेसे उसपर हरताल फेर दी गई है और उसकी जगह यह श्लोक और उत्थानिका लिख दी गई है—

ओं नमः पार्श्वाय ।

त्वरितमहिमदूतामंत्रितेनाद्भुतात्मा,
विषसमपि मघोना पृच्छता शब्दशास्त्रम् ।
श्रुतमदरिपुरासीद् वादिवृन्दाप्रणीनां,
परमपदपदुर्यः स श्रिये वीरदेवः ॥

अष्टवार्षिकोऽपि तथाविधमक्ताभ्यर्थ-
नाप्रणुन्नः स भवनानिदं प्राह—सिद्धिरने-
कान्तात् । १-१-१ ।

विस्मयो रमयेः शिष्ट्या

स तं चेद्देवनन्दिनमिति ॥

विक्रमादृतुखयुगाब्दे ४०६ देवनन्दी,
ततो गुणनंदि-कुमानंदि-लोकचन्द्रानंतरं
मुनिरैयुगाब्दे प्रथमः प्रभाचन्द्र इति
बौटिके । ”

इसी तरह ४-३-७ (वेत्ते सिद्धसेनस्य)
सूत्र पर लिखा है—

“वेत्तेः सिद्धसेनस्य चतुष्टयं समन्त
भद्रस्य प्रक्षोपोऽर्वाच्यता स्फुटत्वात्, रात्रेः
प्रभाचन्द्रस्य वदिति बौटिकतिमिरोप-
लक्षणे ।”

अन्तमें ५-४-६५ (शश्लोमि) सूत्रपर
एक टिप्पणी दी है जिसमें पाणिनि आदि
वैयाकरणोंकी असर्वज्ञता सिद्ध की गई है—

“प्रयोगाशातना माभूदनादिसिद्धा हि
प्रयोगाः । ज्ञानिना तु केवलं ते प्रकाशयंते
न तु क्रियंन् इति । अतएव शश्लोटीति
पाणिनीयसूत्रं वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वर-
यवरपरः शकारश्चकारं नवेति सर्ववर्म-
कर्त्तृककालापकसूत्रानुसारि । अतएव
पाणिन्यादयोऽसर्वज्ञा इति सिद्धं । अतएव
तेषां तत्त्वत आप्तत्वाभाव इति सिद्धिः ।
नन्वभ्यः प्रभृतिनिसूत्रे निर्जरसैर्मुख्या यदि
युक्तिस्ते मस्कारणैव भवत्कृतमास्ते न तु
सारस्वतवाग्देव्या । शश्लोटीप्रमुखैः सूत्रै-
स्तच्छश्रुप्रभृतिपदादर्शी कालापाद्युपजीवी
पाणिनिरजिनत्वं प्रति नाव्यक्तः ।”

जहाँ सूत्रपाठ समाप्त होता है वहाँ
लिखा है—

इत्याख्यद्भगवानर्हन्श्रुत्वेन्द्रस्तु मुदं वहन् ।
वादिक्काब्जचन्द्रःस्वमंदिराभिमुखोऽभवत् ॥

आगे ग्रन्थ प्रशस्ति देखिए—

“ओं नमः सकलकलाकौशलपेशल-
शीलशालिने पार्श्वाय पार्श्वपार्श्वाय ।

स्वस्ति तत्प्रबचनसुधासमुद्रलहरीस्नाथिभ्यो
महामुनिभ्यः । परिसमाप्तं च जैनेन्द्रं नाम
महाव्याकरणं । तदिदं यत्स्वयं श्रीवीर-
प्रभुर्मघोने पृच्छते प्रकाशयांचकार । सपा-
दलक्षव्याख्यानकपरमतमदांधकारापहार-
परममिति । नमः श्रीमच्चरमपरमेश्वरपाद-
प्रसादविशदस्याद्वादनयसमुपासनगुणको-
टिमत्कौटिकगणाविभूतचिद्विभूतिविमलम-
द्रचांद्रकुलविपुलबृहत्तपोनिगमनिर्गतनागपु-
रीयस्वच्छगच्छसमुत्थमुत्पविपाश्वचंद्रशा-
खासुखाकृतसुकृतिवररामेदूपाध्यायचारुच-
रणारविंदरजोराजीमधुकरानुकरवाचकपद-
वीपवित्रिताक्षयचंद्रवरणेभ्यः ससुधी रक्त-
चंद्रम् । श्रीवीरात् २२६७ विक्रमनृपात्
सं, १७९७ फाल्गुनसित्तत्रयोदशीभौमे तक्ष-
काख्यपुरस्थेन रत्नर्षिणा दर्शनपावित्र्याय
लिखितं चिरं नंघात् ।”

ग्रन्थके पहले पत्रकी खाली पीठपर
भी कुछ टिप्पणियाँ हैं और उनमें अधि-
कांश वे ही हैं जो ऊपर दी जा चुकी हैं ।
शेष इस प्रकार हैं—

ओं नमः पार्श्वाय ।

जैनेन्द्रमैन्द्रतः सिद्धहैमतो जयहेमवत् ।

प्रकृत्यंतरदूरत्वान्नान्यतामेतुमर्हति ॥

कथं

इंद्रश्रंद्रः कशिकृस्नापिशली शाकटायनः ।

पाणिन्यमरजिनेंद्रा जयंत्यष्टा हि शाब्दिकाः ॥

इति ? चतुर्थी तद्धितानुपलक्षणात् ।

यदिद्राय जिनेंद्रेण कौमारेपि निरूपितं ।

ऐंद्रं जैनेंद्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनं ॥

यदावश्यकरिण्युक्तिः—

अहं तं अम्मापिअरो

जाणित्ता अहियअट्ठवासं तु ।

कयकोउअलंकारं

लेहायरिअस्स चवर्णित्ति ॥

सको अ तस्समक्खं भयवंतं

आसणे निवेसित्ता ।

सद्दस्सलक्खणं पुच्छे

वागरणं अवयवा इदं ॥ इति ॥

तदवयवाः केचन उाध्यायेन गृहीताः ।

ततश्चैन्द्रं व्याकरणं संजातमिति हरिभद्रः ॥

यत्तु देवनंदिबौटिकपूज्यपाद

इतीच्छंतस्तद्गुरुकाः पूज्यपादस्य लक्षणं ।

द्विसंधानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ।

इति धनंजयकोषात्तदयुक्तं । नेति चेत्कथं-

जैनैर्द्रमिति । द्वादशस्वरमध्यामति चेन्न ।

इतरोपपदस्याभावात् । जैनकुमारसंभववद्-

तिरिति चेन्न । कुमारवर्दिंद्र प्रति श्लेषाभा-

वात् थारीतिकततद्धितभावाच्च । तर्हि

लक्ष्मीरात्यंतिकी यस्य निरवद्यावभासने ।

देवनंदितपूजेशे नभस्तस्मै स्वयंभुवे ॥

का गतिरिति चेत् ।

लक्ष्मीरात्यंतिकीपद्यनुपज्ञेशस्य किं तरां ।

ऐंद्रत्वयकि तत्त्वार्थे मोक्षमार्गस्य पद्यवत् ॥*

मिवाद्यश्चेत्प्रथमं यदि हैमेत्वपंक्ष्यते ।

कालापकादि न तथा पट्वैन्द्रं महते कृतिः ॥

पूर्वत्र । सिप् वस् मस् १ सिप् थस्

थ २ तिप तस् शि ३ इड् वहि महि १ थस्

आथां ध्वं २ त आताम् झङ् ३ इति ।

आख्यातरीतिं प्रति देवराजे

मिन्वस्मसो यः पितः रादितोदाः ।

जीवं प्रपन्नाहममात्थ विश्व

तत्त्वादिमं स्वां मतिमात्मनाथं ॥†

तर्हि सिद्धसेनादिविशेषोपि दुर्निवार इति चेन्न

जातामात्रोपि चिद्दीर्घं प्रत्यात्मशरणो सि यः ।

जनता का वरांकीयं परात्मन् वीर तत्पुर ॥

* इसके आगे ४-३-७ सूत्रकी टिप्पणी जैसा ही लिखा है और फिर ३-४-४० सूत्रकी टिप्पणीके 'देवनन्दिमतां' आदि दो श्लोक दिये हैं ।

† इसके आगे ५-४-६५ सूत्रकी टिप्पणी दी है ॥

इति बौटिकमततिमिरोपलक्षणस्य तुर्ये-
ऽवकाशे इंद्रजिनैर्द्रौ प्रत्युत्तरिणौ यदतोडे-
टातद्धिततस्त्वमसिमिबिड्दौरयमद्रैर्द्रं जैनैर्द्रं
व्याकरणानां । सिद्धिमनेकांतादिच्छं अः×
क×पाहं त्यतथारीते हैमागीकृतवर्त्मनप्रक्षे-
पार्यविजेयचिरंजीया इति प्रसन्न चंद्रोत्पले (?)

कांग्रेस ।

महात्मा गांधीका लेख ।

नागपुरकी कांग्रेस हो गई । उसके विषयमें महात्मा गांधीका जो संक्षिप्त लेख 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित हुआ है, उसे हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ, भारतमित्रसे, उद्धृत करते हैं:—

“सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण कांग्रेस भारतमें हो गई । इसमें वर्त्तमान शासन-पद्धतिके विरुद्ध जैसा बड़ा प्रदर्शन हुआ वैसा पहले कभी नहीं हुआ । सभापतिने यह बात सोलह आने ठीक कही कि इस कांग्रेसमें अध्यक्ष तथा नेता लोगोंको नहीं चलाते बल्कि लोग ही उन्हें चला रहे हैं । कांग्रेस मञ्चपर प्रत्येक सज्जनको यह स्पष्ट हो गया कि अब जनताने देशकी बागडोर अपने हाथमें ले ली है । नेता बड़ी खुशीसे धीरे धीरे चल सकते हैं ।

कांग्रेसने अपने उद्देश्यके विषयके वाद-विवादमें एक दिन लगाया; जनताने बड़ी दृढ़तासे उसे पास किया, सिर्फ दो महा-शय विरोधी थे । असहयोग प्रस्तावमें भी एक दिन लगाया गया और यह बड़े उत्साहसे पास किया गया । अन्तिम दिन कांग्रेसने संघटनाकी शेष ३२ धाराओंमें लगाया । मौ० मुहम्मद अलीने बुलन्द आवाजमें इनका अनुवादकर लोगोंको समझाया । जनता बड़े ध्यानसे सब बातें

सुन रही थी क्योंकि जब धारा = आई जिसमें लिखा था कि कांग्रेस देशी रजवाड़ोंके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, तब उसमें मतभेद पाया गया । कांग्रेस उस अवस्थामें मन्तव्य नहीं पास करती जब वह समझती कि देशी रियासतोंका प्रतिनिधित्व हम नहीं कर सकती । आनन्दकी बात है कि देशी राज्योंमें उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करनेका प्रस्ताव सुभाया गया जिससे मैं लोगोंको यह बता सका कि वादग्रस्त धाराका यह अभिप्राय नहीं है कि कांग्रेस देशी रजवाड़ोंकी प्रजाकी शिकायतों और अभिलाषाओंका पक्ष न ले । बात असल यह है कि वह इस विषयमें कोई काररवाई नहीं कर सकती; अर्थात् कार्यसे देशी नरेशोंके विरुद्ध शत्रुभाव उत्पन्न नहीं कर सकती । कांग्रेस सरकारपर आदेश करना चाहती है, पर देशी भूपतियोंपर नहीं ।

इस प्रकार खूब सोच विचारके बाद कांग्रेसने तीन बातें स्थिर की हैं । पहले पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेकी बात; हो सके तो अब भी ब्रिटिश सभ्यन्धके साथ और नहीं तो उससे बाहर भी । ऐसा स्वराज्य प्राप्त करनेका ढंग सम्मानजनक और शान्तिपूर्ण रक्खा गया है जिससे प्रतिनिधियोंकी संख्या घटाकर हर पचास हजार मनुष्य पीछे एक प्रतिनिधि ही लेनेका निश्चय किया है और इस बातपर जोर दिया है कि प्रतिनिधि जनताके सच्चे प्रतिनिधि हों । नागपुरकी कांग्रेसने कलकत्तेकी स्पेशल कांग्रेसके असहयोग प्रस्तावका समर्थनकर उसे हर तरहसे स्पष्ट कर दिया है । शान्तिका पालन करनेपर जोर देकर कांग्रेसने बताया है कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए भारतके भिन्न भिन्न समाजोंमें मेल अवश्य रखना चाहिए और इसलिए हिन्दूमुसलमानोंकी

एकताका उपदेश दिया है । हिन्दू नेताओंसे अनुरोध किया गया है कि ब्राह्मण-अब्राह्मणके भगड़ोंको आपसमें निपटा लें और धर्माचार्योंसे यह कहें कि वे अङ्गुठोंको समाजमें मिलानेकी चेष्टा करें । कांग्रेसने छात्रोंके माता-पिताओं तथा वकीलोंसे कहा है कि वे राष्ट्रकी पुकार सुननेकी और अधिक चेष्टा करें । सरकारी या सरकारसे सहायता पानेवाले स्कूल-कालेज और वकालत छोड़नेका उनकी ओरसे अधिक प्रयत्न न होगा तो वे देशके सार्वजनिक जीवनसे च्युत हो जायेंगे । देशकी पुकार है कि प्रत्येक भारतीय पुरुष या स्त्री अपना काम पूरा करे ।”

तीर्थोंके झगड़ोंको निबटानेका उपाय ।

धर्मको पहचानो ।

(ले० पं० श्रीसुबलाल जी शास्त्री, श्वेताम्बर ।)

इतिहास तथा व्यवहार कहता है कि मनुष्य अनेक काम ऐसे करता है कि जिनमें नाम तो धर्मका होता है पर धर्मकी मात्रा उनमें बहुत कम रहती है, या बिलकुल ही नहीं रहती । तीर्थ-रक्षणका कार्य अवश्य धर्मका साधन माना जाता है, पर इसमें भी जब अज्ञान तथा कदाग्रहका योग हो जाता है तब वह धर्मका साधन होनेके बदले अधर्मका पोषक बन जाता है ।

जैनसमाज धर्मप्रियसमाज होकर भी कई सालोंसे अपना स्वरूप व कर्तव्य भूल जानेके कारण अधर्मकी राह चलता हुआ नजर आता है । और समय, शक्ति तथा धनको परिणामशून्य भगड़ोंमें लगाकर, शत्रुताका भाव बढ़ाकर भाई

भाईसे अलग हो रहा है । इस समाजके प्रधानतया श्वेताम्बर, दिग्म्बर दो फिरके हैं । ये दोनों एक दूसरेके समान होते हुए भी, साहित्य, आचार, और विचारमें अपनी खास विशेषता रखते हैं । भगवान् महाबीरके आचार व विचारको अनेक अंशोंमें सुरक्षित रखनेका गौरव श्वेताम्बर और दिग्म्बर दोनों सम्प्रदायोंको प्राप्त है । ये दोनों सम्प्रदाय मूर्तिको संसार-तरणका साधन मानते हैं और इसी भावसे पूजते हैं, इसलिये प्रसिद्ध तीर्थोंपर इन दोनोंका स्वत्व है । इसके विरुद्ध जैन होते हुए भी मूर्तिकी प्रतिष्ठा न करनेवाले स्थानकवासी सम्प्रदायका तीर्थोंपर स्वत्व नहीं है । इतना ही नहीं, बल्कि वह सम्प्रदाय सब तीर्थोंको सर्वथा दिये जाने पर भी लेनेसे इनकार ही करेगा, क्योंकि उनपर उसकी श्रद्धा नहीं । इस तरह देखा जाय तो, चाहे उपासना व विधिविधान दोनों सम्प्रदायोंमें कितने ही भिन्न क्यों न हों पर हैं ये दोनों परस्पर सहोदर भ्राता; क्योंकि मूर्ति कल्याणका साधन है, इस तात्त्विक भावको दोनोंने हृदयसे अपनाया है और इसलिये दोनों सम्प्रदायोंके विद्वान् श्रीमानोंने, अपने अपने कर्तव्यका चिरकालसे पालन किया है । इस कर्तव्यका पालन करते हुए दोनों सम्प्रदायोंमें दुर्भाग्यवश ऐसी नासमझी, ऐसी असहिष्णुता घुस पड़ी कि जिसके कारण दोनों स्वाभाविक भ्रातृभाव भूलकर एक दूसरेको विरोधी भावसे देखने लगे । दोनों सम्प्रदायवाले अपने कषायजय रूप पैतृक नैसर्गिक जैनत्वको छोड़कर व भावतीर्थको भूलकर द्रव्यतीर्थके जयरूप स्थूल जैनत्वके सम्पादनमें अपनी द्रव्यशक्तिका व्यय करने लग गये । इसी कारण इन दोनों सम्प्रदायोंका व्यवहार कषायकालिमासे कलङ्कित है । परस्पर मेल,

समभाव और आदरकी बात कहीं नजर नहीं आतीं, दो भाइयोंके जीवनकी धारायें भले ही भिन्न मार्गसे बहें, इसमें कोई अचरज नहीं, पर जब दोनोंका बहाव एक दूसरेके विरुद्ध हो तब अवश्य खेद होगा । हम देखते हैं कि ये दोनों अभी पारस्परिक शत्रुभावसे प्रेरित हैं । अन्य ऐसे धार्मिक विषय बहुत कम हैं जिनमें दोनों सम्प्रदायवालोंको एकत्र होनेका और मेलजोल बढ़ानेका तथा एक दूसरेकी विशेषता जानकर प्रमुदित होनेका अवसर मिलता हो; किन्तु उन पवित्र तीर्थ स्थानोंपर विशेष हकके बहाने, विशेष हकके नामपर दोनों सम्प्रदायवाले अपने कषायका जहर भयंकर रीतिसे उगल रहे हैं । यह काम जैनत्वकी रक्षाके लिये हो रहा है, यह और भी लांछनकी बात है ! इस अज्ञानजनित आवेशमें आकर दोनों सम्प्रदायोंने अपने सर्वस्वका हानिकारक उपयोग अबतक किया । जैन जैसा व्यापारी समाज जिसको अपने धन्धेसे धार्मिक कामके लिये फुरसत बहुत कम मिलती है, जिसमें समाजकी भलाईके लिये बुद्धिका विशेष प्रयोग करनेवाले बहुत कम पाये जाते हैं, और जिसमें कौड़ी कौड़ीका हिसाब गिनकर धन संचय करनेवालोंकी ही तादाद बड़ी है, उसने अपने समय, अपनी बुद्धि और अपने धनको साधारण लाभदायक कार्यमें तथा समभाववर्धक कार्यमें उतना नहीं लगाया जितना कि विरोध बढ़ानेमें । दोनों सम्प्रदायवाले यह जानते हैं कि, अदालतें विदेशीय सत्ताके केन्द्र हैं । समय, बुद्धि और धननाशक प्रधान यन्त्र हैं । और व्यय किया हुआ द्रव्य जैनभावसे विरुद्ध मार्गमें अर्थात् हिसाके पोषणमें जा रहा है, तब भी धर्मभावनाके नशेमें वे नहीं समझते । कभी एक जीता व दूसरा हारा

और कभी दूसरा जीता व पहला हारा; पर आजतक न कभी किसी एककी जीत ही जीत हुई और न दूसरेकी हार ही हार। जिस समय अधिकारी जिसके लिए अधिक अनुकूल हुए और जिसने उनकी अधिक पूजा की उस समय वे उसीपर तुष्ट हुए, दूसरे समय दूसरे पर। इस तरह दोनों सम्प्रदायोंकी मुकदमे-बाजीके नतीजेका चक्र अस्तोदयरूपमें चलता ही रहा है और हारनेवाला सम्प्रदाय फिर जीतनेकी आशासे भरसक दौड़ लगा रहा है। यही आजतकका दोनों सम्प्रदायोंके तीर्थरक्षणका इतिहास है। क्या कलह करनेके सिवाय समाधानीके साथ तीर्थरक्षणका कोई मार्ग ही नहीं निकल सकता? निकल सकता है, पर अज्ञानका आवरण और हठका जहर ऐसी चीजें हैं कि मनुष्यको सत्य वस्तुका बोध नहीं होने देतीं। अब और देशोंके साथ साथ हिन्दुस्तानमें भी स्वावलम्बी होकर हिताहितके निर्णय करनेका भाव उदित हो रहा है और अपनी शक्तिका वृथा व्यय न करके उसको एकान्त हितकारी काममें लगानेका भाव भी प्रकट होने लगा है। जैनसमाजको भी इस पवित्र भावसे वञ्चित न रहना चाहिए और इस तरह अहिंसा भावकी रक्षा करके सच्चे जैनत्वका परिचय देकर समय, बुद्धि तथा धनको विद्या व चरित्रकी वृद्धिमें लगाना चाहिए। यह काम आपसमें सम्भौता कर लेनेसे ही हो सकता है। इसके लिए पहले भी कुछ लोगोंने प्रयत्न किया था जो दुर्भाग्यवश निष्फल हुआ था। पर अब देशके कोने कोनेमें और कालके अंशमें एकताकी गुँज सुनाई दे रही है। खुशीकी बात है कि अहिंसा पत्रमें श्रीयुत ज्ञानानन्दजी वर्णीने तीर्थोंके भगड़ोंको आपसमें निपटानेका प्रस्ताव किया है और महात्मा

गांधीको सरपंज करनेकी बात छोड़ी है। हिन्दुस्तानमें क्या सारी दुनियामें महात्मा गांधीसे बढ़कर कोई समभावशील इस समय न सुना गया। यह तो स्पष्ट बात है कि अदालतके पेट भरे और मुलाहिजावाले अधिकारियोंका निर्णय हमारे ऊपर उतना असर नहीं डाल सकता जितना कि असर म० गांधीका किया हुआ निर्णय डाल सकता है। अगर हम ऐसे महात्मासे फायदा न उठा सके तो फिर यह भी समझ लेना चाहिए कि हमारी बुद्धि इतनी मारी गई है कि न हम भगवानकी मूर्तिसे ही फायदा उठा सकते हैं, न तीर्थसे और न शास्त्रसे ही। हमको अपने हितकी सच्ची दिशा मालूम कर लेनी चाहिए, और उदारतापूर्वक आपसके सम्भौतेके लिए यत्न करना चाहिए। इसमें त्यागकी भावना जरूर रखनी चाहिए। अपना थोड़ासा हक चला जाय तो उसे भाईके हाथमें गया हुआ समझकर उसी तरह सन्तोष मानना चाहिए जिस तरह एक भाई दूसरेको कोई चीज इच्छापूर्वक देकर सन्तोष मानता है। मैं त्यागभावनाको सामने रखकर दोनों सम्प्रदायोंके भाइयोंसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे इस काल-लब्धिको, सत्यधर्मको पहचानें और प्रस्तुत प्रस्तावको एक आवाजसे मंजूर कर लें। (अहिंसा।)

समस्त दिगम्बर जैन पंचोंसे अपील ।

प्रिय महानुभावो, धर्मस्नेहपूर्वक जय जिनेन्द्र ।

आपको भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा यह तो विदित हो ही चुका होगा, कि प्रसिद्ध परमपूज्य तीर्थराज श्रीसम्मेदशिखरके सम्बन्धमें आज कितने ही वर्षोंसे हमारे और श्वेताम्बरी भाइयोंके दरम्यान कोर्टोंमें भगड़े चल रहे हैं जिनमें दोनों पक्षकी ओरसे लाखों रुपये बर्बाद हो चुके फिर भी उक्त भगड़ेका अन्त होनेमें नहीं आया । हालमें इन्हीं भगड़ोंके लिए दिगम्बर जैनसमाजकी ओरसे २० लाख रुपया एकत्र किये जानेका प्रस्ताव पास हुआ है और करीब २॥ लाख रुपया एकत्र भी हो चुका है । यद्यपि प्रत्येक समाज क्या मनुष्यमात्रको अपने धार्मिक स्वत्वोंकी रक्षाका अधिकार प्राप्त है और उसके लिए यत्न भी होना चाहिए, तो भी एक ही धर्मपिताकी दो भिन्न भिन्न सन्तानोंका परस्पर इस प्रकार मुकद्दमेबाज़ी करना मानो जैनधर्मके पवित्र उद्देश्यको तिलांजलि देना है । जो जैनधर्म परम वीतराग भावनाको प्रज्वलित करनेवाला, मनुष्यमात्रके हृदयसे द्वेष और ईर्ष्याके बीजोंको जीर्ण शीर्णकर मध्यस्थ वृत्तिकी जड़ जमानेवाला और संसारमें सबसे उत्कृष्ट त्यागभावकी शिक्षा देनेवाला है, उसी विश्व-पूज्य जैनधर्मके इन पवित्र उद्देश्योंपर मुकद्दमेबाज़ीके द्वारा कालिमा फेरकर अपने द्रव्यबलका अनुचित व्यवहार और अपव्यय करना धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टिसे पतनका ही कारण होगा । दूसरे मुकद्दमेबाज़ीके द्वारा अंतिम

विजय किस पक्षकी होगी, इस बातका पूरा पूरा भविष्य वर्तमानमें बतलाना असम्भव है । मुकद्दमेबाज़ीमें दोनों पक्ष सदाके लिए पराजित ही हो जाते हैं । आज जो पक्ष विजयकी कामनामें खुश है कल वही पक्ष कोर्टमें जाकर पराजित हो जाता है और जो पक्ष आज पराजित है कल वही विजयसे खुश हो जाता है । सरकारी कोर्टोंमें सदैव सत्यकी ही विजय या अत्याचारका परिहार हो, ऐसा नहीं है; बल्कि कभी कभी इससे विपरीत भी हुआ करता है—असत्य सत्य और सत्य असत्य हो जाया करता है । इसके अतिरिक्त, फैसला होनेके बाद धनकी बर्बादीके कारण दोनों जयपराजय-पक्ष वास्तवमें मुकद्दमेबाज़ीकी पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा सदैव पराजित ही बने रहते हैं । जिसमें थोड़ीसी भी बुद्धि है वह विचार करनेसे इस बातको समझ सकता है कि इन मुकद्दमोंके लड़नेसे चाहे कितने ही जोरोंसे वे क्यों न लड़ाये जावें और उनमें चाहे कितना ही रुपया क्यों न खर्च किया जावे, तीर्थोंके भगड़े कभी नहीं मिटेंगे । यदि आज एक भगड़ा मिट जायगा तो कल कोई दूसरा खड़ा हो जायगा और परसों तीसरा । इनकी परम्परा आपसमें निपटारा किये बिना सदैव चलती रहेगी ।

आजतक हमारी समाजका लाखों रुपया इसी मुकद्दमेबाज़ीमें बर्बाद हो चुका तो भी अभीतक हमारी समाज सफलीभूत नहीं हुई । ऐसे कठिन समयमें जब कि देशमें जहाँ तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं, लाखों निर्धन अन्नके बिना तड़प तड़पकर मर रहे हैं, बुंदेलखण्ड आदि प्रान्तोंमें स्वयं जैनियोंके ही बच्चे टुकड़ोंके लिए मुहताज हो रहे हैं, समाजके मध्यम श्रेणीके गृहस्थोंके व्यवसाय वाणिज्यमें भी पहले जैसी आमदनी अब नहीं रही है,

महँगीके कारण खर्च पहलेसे कई गुना बढ़ गया और देशसेवा, सामाजिक शिक्षा-प्रचार तथा धर्मोन्नतिके लिए अग्रणीत धनकी आवश्यकता है, तब दिगम्बर जैनसमाजके बड़े बड़े श्रीमानोंके द्वारा २० लाखका चन्दा आगे मुकद्दमा लड़नेके लिए एकत्र हो रहा है ! यह हमारे लिए घोर अधःपतन और लज्जाकी बात नहीं तो और क्या है !

एक तरफ देशके परमपूज्य नेता वकीलोंको वकालत छोड़नेका और जनसाधारणको अपने आपसी भगड़े पंचायतों द्वारा तय करनेका उपदेश दे रहे हैं और हिन्दू मुसलमान सरीखे परस्पर धर्मशत्रु आज अपने हठको त्यागकर एक होकर गले मिल रहे हैं; और दूसरी तरफ हम दिगम्बर जैन और श्वेताम्बर जो एक ही धर्मपिताकी सन्तान हैं, एक दूसरेको फूटी आँख नहीं देख सकते और अपने समाजका धन चूसकर आगे इस मुकद्दमेको प्रीवी कौन्सिलतक ले जानेकी कसर कस रहे हैं, यह बात भारतवर्षके भावी इतिहासमें दोनों समाजोंके लिए महान् कलंकका टीका लगानेवाली अंकित की जाबगी और समस्त भारतवासी हमारी मूढ़तापर शोकाश्रु बहाये बिना न रहेंगे ।

अतएव, महानुभावो ! हमारी दिगम्बर समाजके मुखिया पंचोंसे सविनय प्रार्थना है, कि कानपुरमें होनेवाली भारतवर्षीय दि० जैन महासभाके अधिवेशनके समय इस बातका निश्चय किया जावे कि दिगम्बर समाजकी ओरसे एक सुलह संस्थापक डेपुटेशन श्वेताम्बरी मुखियाओंके पास इस उद्देश्यसे जावे कि भिसम्बेई शिखर तथा अन्यान्य तीर्थक्षेत्रोंके ओ घर्तमान भगड़े कोटोंमें चल रहे हैं

वे किसी देशपूज्य नेताके द्वारा, जो दोनों सम्प्रदायवालोंको मान्य हो, आपसमें तय करा लिये जावें, जिससे लाखों रुपयेकी दोनों पक्षवालोंकी बचत हो; दूसरे परस्पर गले मिल जानेसे भविष्यमें भी कभी ऐसे भगड़े उपस्थित न होने पावें । अतः आगे प्रीवी कौन्सिलमें मुकद्दमा दायर न करके आपसमें तय करानेकी गरजसे एक डेपुटेशन अपने समाजकी ओरसे श्वेताम्बर भाइयोंके पास भेजनेके लिए प्रत्येक स्थानके दि० जैन पंचोंको चाहिए कि वे भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई और भा० दि० जैन महासभा कार्यालय बड़नगरके पतेपर अपने स्थानोंसे सभाओं द्वारा प्रस्ताव पास करके भेज देनेकी महती कृपा करें । इसीमें जैनधर्म और जैनसमाजका कल्याण है । आशा है, कानपुरमें होनेवाली महासभा इस जरूरी विषयपर खास तौरपर ध्यान देगी ।

दि० जैनसमाजके कृपाकांक्षी,
स्थानीय सकल दि० जैन पंचान,
अमरावती (बारा)

विविध विषय ।

१-बहुविवाह-निषेध ।

हालमें दिगम्बर जैन खंडेलवाल महासभाने, अपने कलकत्तेके अधिवेशनमें प्रस्ताव नं० ८ के द्वारा बाल-विवाहादि कुरीतियोंका निषेध करते हुए, 'बहुविवाह' का भी निषेध किया है—अर्थात् एक स्त्रीके मौजूद होते हुए दूसरा विवाह करानेको अनुचित ठहराया है—और इसे भी "जातिको अधोदशामें पहुँचानेवाली और जातिके गौरवको घटानेवाली एक कुरीति" प्रतिपादन किया है। यद्यपि यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि बहुविवाहका रिवाज बहुत प्राचीन समयसे चला आता है—जैनियोंके कथा-ग्रन्थ और उनके प्रधान पुरुषोंके अधिकांश चरित्र इसके उल्लेखोंसे भरे हुए हैं—फिर भी खंडेलवाल महासभाका ऐसे प्राचीन रिवाजके विरुद्ध इतने जोरोंके साथ प्रस्ताव पास करना उसके लिये निःसन्देह एक बड़े ही साहसका कार्य हुआ है। उसने अपने प्रस्तावके इस अंशके द्वारा यह बतला दिया है कि, प्राचीन कालमें यह प्रथा भले ही अच्छी समझी जाती हो परन्तु आजकलकी दृष्टिसे वह अच्छी नहीं है, घातक है—उसके कारण खंडेलवाल जाति अधोदशाको जा रही है और उसका गौरव नष्ट हो रहा है। साथ ही उसने यह भी सूचित कर दिया है कि इस किसमके रीतिरिवाज हमेशा एक रूपमें नहीं रहा करते, वे देश-कालानुसार बराबर बदला करते हैं और उन्हें बदलनेकी ज़रूरत हुआ करती है; जैसा कि हमने "शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण" नामके लेखमें ज़ाहिर किया था। इस

दृष्टिसे यह प्रस्ताव बड़े महत्त्वका है। और, जहाँतक हम समझते हैं, इस विषयका यह पहला ही प्रस्ताव है जो किसी ऐसी बड़ी सभासे पास हुआ हो। इतने बड़े महत्त्वका प्रस्ताव सहज हीमें पास हो गया हो, ऐसा नहीं है। इसके पास होनेमें बड़े जोर लगे हैं और यह बहुत कुछ वादविवादके पश्चात् पास हुआ है, परन्तु अभीतक इसके सम्बन्धमें कोई उल्लेख किसी पत्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया। अतः आज हम बाबू निहालकरणजी सेठीके पत्र परसे इसका कुछ परिचय अपने पाठकोंको कराते हैं—

जिस समय बालविवाह, वृद्धविवाह और कन्याविक्रय आदिके निषेधका यह प्रस्ताव सभामें उपस्थित किया गया उस समय इसमें 'बहुविवाह' शब्द नहीं थे। अतः बाबू निहालकरणजी सेठीने खुली सभामें यह प्रस्ताव किया कि इसमें 'बहुविवाह' शब्द और शामिल किये जावें—अर्थात् बहुविवाहका भी बालविवाह, वृद्धविवाह आदिकी तरह निषेध किया जाय। इसपर परिडित धन्नालालजीने उक्त संशोधनका विरोध किया, और न केवल विरोध ही किया बल्कि इतनी गड़बड़ मचाई कि उस गड़बड़में आप बातको बिलकुल उड़ा देना ही चाहते थे। परन्तु इतनी खैर हुई कि जनता उनसे सहमत नहीं थी। यद्यपि परिडितजीने बहुविवाहकी प्रथाकी शास्त्रोक्त बतलाकर और धर्मकी बहुत कुछ दुहाई देकर, बहुतेरा चाहा कि उनकी बात मान ली जाय परन्तु वे इस बातका कोई जवाब न दे सके कि यदि यह प्रथा पुराणोंमें उल्लिखित होनेसे ही मान्य है तो फिर अन्य जातिसे विवाह, म्लेच्छ आदिसे विवाह, निकट सम्बन्धियोंसे—यथा मामा, काका, आदिकी लड़कीसे

विवाह, खयंवर रीतिसे विवाह, परदेका अभाव आदि शास्त्रोक्त बातोंको भी मान्य समझना होगा। प्रत्युत, उन्होंने अपनी पण्डितार्थके भरोसे पर उपस्थित जनताको आश्चर्यमें डुबाते हुए यहाँतक कह डाला कि “जैनधर्म प्रत्येक गृहस्थको बाध्य करता है कि एक पुत्र अवश्य उत्पन्न करे, दत्तक पुत्र होनेपर भी आवश्यक है कि अपना पुत्र अवश्य पैदा करे ! यही नहीं, यदि ऋतु-कालको प्राप्त स्त्रीसे उसका पति संभोग न करे तो वह भ्रूण-हत्याका पापी होता है और जो स्त्री ऐसे समयमें अपने पतिके पास न जावे तो वह दूसरे जन्ममें शृगाली अथवा शूकरी होती है !!” मालूम नहीं पण्डितजीको कौनसे जैनसिद्धान्तसे ऐसा अनुभव हुआ है और किस आर्ष ग्रन्थमें उन्हें ये सब बातें लिखी हुई मिली हैं !* परन्तु इसे रहने दीजिए और नतीजेपर आइये। वह यह कि, पण्डितजीके इतना कह डालने पर भी जनताने उनकी बातको कुछ भी महत्त्व न देकर उसे नहीं माना और बाबू साहबका संशोधन स्वीकार करके बहुविवाहके निषेधका प्रस्ताव पास कर ही दिया। इस तरहपर यह प्रस्ताव बहुतसे विरोधको सहन करके हमारे सामने आया है, जिसका हम अनेक दृष्टियोंसे अभिनन्दन करते हैं।

२—हठधरमी और पक्षपात ।

अनुचित दबाव ।

दि० जैन खंडेलवाल महासभाने, अपने कलकत्तेके अधिवेशनमें, सबके

* सुना जाता है कि किसीने मन्दिरजीमें एक नोटिस भी लगाया था और उसके द्वारा पण्डितजीसे दरियाफ्त किया था कि वे इस बातको बतलावें कि कौनसे आर्ष ग्रन्थमें यह भ्रूणहत्यावाली बात लिखी है।

अन्तमें जो प्रस्ताव (नं० १७) पास किया है वह इस प्रकार है—

“जैनहितैषी, सत्योदय और जाति-प्रबोधक ये तीनों पत्र जैनागमको भूठा बतलाते हैं और हमारे परम पूज्य तीर्थ-करों व आचार्योंको गालियाँ तक देते हैं। अतः यह भारतवर्षीय खं० दि० जैनमहा-सभा प्रस्ताव करती है कि ये तीनों पत्र जैन पत्र न समझे जावें तथा इन तीनोंका बहिष्कार किया जावे।”

जैनहितैषीके सहृदय पाठक अपने इस पत्रके सम्बन्धमें ऐसी भूठी और निःसार लांछनाओंको देखकर ज़रूर एकदम चौकेंगे और आश्चर्यके साथ यह कहेंगे कि क्या उक्त सभामें ऐसे ही विचारशील, विवेकी और निष्पक्ष विद्वान् मौजूद थे जिन्होंने इतने अधिक सफेद भूठको अपने प्रस्तावमें स्थान देना पसन्द किया है ? परन्तु उन्हें इस प्रकारसे चौकने और आश्चर्य करनेकी ज़रूरत नहीं है। वास्तवमें, यह प्रस्ताव सभाकी शुद्ध सम्मतिसे पास नहीं किया गया बल्कि कुछ हठधरमी और पक्षपाती लोगोंके अनुचित दबावका परिणाम है, जिसका रहस्य हम अपने पाठकोंके संतोषार्थ नीचे प्रकट करते हैं।

उक्त सभाके सभापति श्रीमान् सेठ लालचन्दजी सेठीने, अपने व्याख्यानमें, समाजकी उस बहिष्कार-नीतिको अनुचित और अनावश्यक बतलाते हुए जो कि कुछ सामाजिक पत्रोंके साथमें चल रही है, समाजके कुछ पत्रोंकी प्रशंसा की थी और उनमें “जैनहितैषी” को सबसे प्रथम स्थान प्रदान किया था—यह कहा था कि, “मैं वर्तमान सामाजिक पत्रोंमें, “जैन-हितैषी” और “जैनमित्र” की प्रशंसा किये बिना नहीं रहूँगा, जिनका सम्पादन बड़ी

योग्यतासे किया जाता है। बल्कि जैन-हितैषीके कितने ही लेख तो बड़ी खोजके साथ लिखे जाते हैं।” इतने पर भी सञ्जेकृ कमेटीमें जैनहितैषी आदिके बहिष्कारका उक्त प्रस्ताव रक्खा गया। परन्तु कमेटीने बहुत कुछ ऊहापोहके बाद उसे नामंजूर किया और इसलिए वह खुली सभामें पेश नहीं हो सकता था। चूँकि उक्त पत्रोंको अजैन पत्र करार देने और उनका बहिष्कार करनेकी यह सब बात कलकत्तेकी दिगम्बर जैन सभाकी ही उठाई हुई अथवा ईजाद की हुई थी और उसीके सदस्य तथा अनुयायीजन इस समय कलकत्तेमें इस अधिवेशनके मूविंग एंजिन (Moving engine) बने हुए थे। उन्होंने उक्त प्रस्तावके पास न होनेकी हालतमें अपनी नककटी समझी। और इसलिए एक षड्यंत्र रचा गया जिसके द्वारा सभापति साहबको यह धमकी दी गई कि यदि यह प्रस्ताव सभामें नहीं रक्खा जायगा तो वह लोग कोई भी कार्य न करने देंगे और न सभाकी किसी कार्रवाईको आगे चलने देंगे। इस षड्यंत्रका हाल सभापति साहबकी जबानी उस वक्त खुला जब कि सभाकी कार्रवाई प्रायः समाप्त हो चुकी थी, रातके १२ बजे थे और करीब दो तिहाई जनता सभासे उठकर चली गई थी। उस समय सभापति साहबने, उक्त धमकी और अनुचित दबावसे प्रेरित होकर और शायद यह समझकर कि यदि इन लोगोंकी यह बात न मानी गई तो कहीं सब की कराई रह न हो जाय, उन लोगोंको इजाजत दी कि वे अपना प्रस्ताव अब पेश करें। उक्त प्रस्ताव उसी दम सभामें पेश किया गया और बाबू निहालकरण जी सेठी एम. एस. सी. ने उसका जोरोंके साथ विरोध किया। चूँकि विचारशील जनता

सभासे प्रायः उठ चुकी थी—उसे खबर भी नहीं थी कि नियम-विरुद्ध ऐसा प्रस्ताव भी सभामें उपस्थित होगा और ज्यादातर वे ही लोग सभामें बैठे हुए थे जो षड्यंत्रके कारण अपने प्रस्तावके पेश होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे या वे लोग थे जो सामाजिक पत्रोंके पढ़ने पढ़ानेसे प्रायः कुछ सम्बन्ध नहीं रखते; इसलिए वोटके समय बाबू साहबकी तरफ चार पाँच वोट ही हो सके और प्रस्ताव बहुसम्मतिसे पास कर दिया गया। इन सब बातोंका अनुभव हमें उक्त बाबू साहबके एक पत्रपरसे हुआ है जिसका कुछ अंश हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं—

“जब सभाका कार्य समाप्त हो चुका तब सभापतिने कहा कि यद्यपि जैनहितैषी आदि पत्रोंके बहिष्कारकी बात Subject Committee (सञ्जेकृ कमेटी) में उठी थी किन्तु वह बहुसम्मतिसे नापास हो गई। इस कारण वह प्रस्ताव नहीं रक्खा गया। किन्तु प्रायः ८० हस्ताक्षरोंका एक पत्र सभापतिके पास पहुँचा था जिसमें कहा गया था कि यदि यह प्रस्ताव न रक्खा जावेगा तो वे लोग कोई कार्य न करने देंगे। अतः उन लोगोंको आज्ञा दी गई कि अब रात्रिके १२ बजे, जब सभामें से दो तिहाई लोग चले गये थे, वे अपना प्रस्ताव पेश करें। ऐसे प्रस्तावका विरोध करना मेरे लिए परम आवश्यक था और मैंने प्रेस ऐक्यू, औरंगजेबकी असहिष्णुता आदि बातोंका उल्लेखकर उसका विरोध किया, और अन्तमें यह कहा कि इन पत्रोंपर धर्मके घातक होनेका जो लांछन लगाया जाता है वह वृथा है, क्योंकि जैनधर्मके वास्तविक सिद्धान्तोंका विरोध कोई कर ही नहीं सकता। सभ्य संसारके सामने उनका मूल्य घट नहीं सकता।

किन्तु (यदि) यह सभा उस हीको धर्म समझती है जिसके अनुसार ऋतुमती स्त्रीके साथ उसके पतिके संयोग न करनेसे भ्रूणहत्याका पाप होता है तो प्रत्येक समझदार मनुष्यका कर्तव्य है कि ऐसे धर्मका खूब विरोध करे और उसकी जड़ काटनेका भरसक प्रयत्न करे । जैन-हितैषी आदि ऐसा ही प्रयत्न करते हैं, अतः वे हमारी प्रशंसा और धन्यवादके पात्र हैं । जो लोग धर्मज्ञ परिणत कहलाकर ऐसी घृणित बातोंका प्रचार करते हैं वे ही सच्चे जैन धर्मके घातक हैं और उन्हींका बहिष्कार उचित है । इसपर तो पंडित जी (धन्नालाल) बहुत उछले कूदे । किन्तु सभापतिने अशांति न होने दी । वोटके समय चार पाँच वोट मेरी ओर थे ।”

इससे पाठक यह समझ सकते हैं कि यह प्रस्ताव कितना महत्त्व रखता है, सभाकी कितनी शुद्ध सम्मतिको लिये हुए है और कितने अनुचित दबाव तथा बेकानूनीके साथ पास कराया गया है । साथ ही, यह भी मालूम कर सकते हैं कि कुछ लोगोंकी हठधरमी और पक्षपातकी मात्रा कितनी बढ़ी हुई है और उसके द्वारा कैसी घृणित कार्रवाई की जाकर समाजमें व्यर्थका असन्तोष और लोभ उत्पन्न किया जा रहा है ।

३-बहिष्कार नहीं, सूचना ।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, खंडेलवाल महासभाके सभापति श्रीमान् सेठ लालचन्दजी सेठीके व्याख्यानके एक अंश पर टिप्पणी करते हुए, अपने गत २३ दिसम्बरके जैनमित्रमें लिखते हैं—

“सफा २६ में आपने चन्द्र पत्रोंके बहिष्कारको अनावश्यक बताया है । इस

पर आपको मालूम हो कि कलकत्ता पंचायतीने “सत्योदय” आदि पत्रोंका बहिष्कार न करके केवल समाजको यह सूचना दी थी कि इनको दि० जैन पत्र न समझे और ऐसा जानकर न पढ़ें जो बहुत आवश्यक बात थी ।” इस टिप्पणीके द्वारा ब्रह्मचारीजीने यह सूचित किया है कि सेठ लालचन्दजीने कुछ पत्रोंकी जो बात अपने व्याख्यानमें कही है वह गलत है । वास्तवमें सत्योदयादि पत्रोंका कलकत्तेकी सभा या पंचायतीने बहिष्कार नहीं किया बल्कि सिर्फ यह सूचना निकाली थी कि इन पत्रोंको जैन पत्र न समझा जाय और न उस दृष्टिसे पढ़ा जाय जिसका अभिप्राय यह था कि इन पत्रोंको पढ़ा तो जरूर जाय परन्तु पढ़ते समय मनमें यह सोच लिया जाय कि ये जैन पत्र नहीं हैं । परन्तु बात ऐसी नहीं है । कलकत्तेकी सभाने खुले शब्दोंमें उक्त पत्रोंके बहिष्कारका प्रस्ताव पास किया है और उसका वह प्रस्ताव जो सेठ गम्भीरमलजी परण्ड्याके सभापतित्वमें पास हुआ था, एक अलग कागजपर मोटे अक्षरोंमें छपा हुआ इस समय हमारे सामने मौजूद है । उसके ऊपर एक और “पञ्चावती पुरवालका क्रोड़पत्र” और दूसरी ओर “इसको मन्दिरजीमें लगा दीजिये” छपा है और नीचे समाजके व्यक्तियोंके नाम उक्त प्रस्तावपर अमल करनेके लिए कुछ प्रेरणात्मक वाक्य हैं । वह प्रस्ताव इस प्रकार है—

“जैनहितैषी, सत्योदय, जाति-प्रबोधक ये तीनों पत्र हमारे परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य और उनके शास्त्रोंको भूठा बतलाते हैं; अतः ऐसे उच्छृंखल पत्रोंका कलकत्तेकी दि० जैनसमाज बहिष्कारका प्रस्ताव करती है ।”

इससे पाठक समझ सकते हैं कि

ब्रह्मचारीजीका यह लिखना कितना भूलसे भरा हुआ है और उनका कितना भोलापन प्रकट करता है। वे स्वयं भी उक्त प्रस्ताव परसे उसका अच्छा अनुभव कर सकते हैं। शायद उन्हें अपने उस प्रस्तावका ही खयाल हो जो केवल सत्योदय और जाति-प्रबोधकके सम्बन्धमें उनके सभापतित्वमें पास हुआ था और जिसपर हम अपने विस्तृत विचार जैन-हितैषीमें प्रकट कर चुके हैं। उस प्रस्तावके बहिरंगमें, यद्यपि 'बहिष्कार' शब्द नहीं था परन्तु वह उसके अन्तरंगमें जरूर मौजूद था और इसलिए थोड़े ही दिनोंके बाद वह उक्त प्रस्तावके रूपमें प्रकट हो गया। आशा है, ब्रह्मचारीजी इसपरसे अपनी भूलको सुधारनेकी कृपा करेंगे। और चूंकि आपको इन पत्रोंका बहिष्कार इष्ट नहीं है, इसलिए आप उदारताके साथ खुले शब्दोंमें अपने मन्तव्यानुसार जैनमित्रमें यह उद्घोषित करेंगे कि "इन पत्रोंको पढ़ना जरूर चाहिए, परन्तु पढ़ते समय यह खयाल रखना चाहिए कि ये जैन पत्र नहीं हैं।"

४-जैन पत्र-संपादकोंको बहिष्कार स्वीकार नहीं।

कलकत्तेकी दिगम्बर जैन सभाने 'सत्योदय' और 'जैनहितैषी' आदि कुछ पत्रोंका बहिष्कार किया था और पंचायतोंके नाम आज्ञापण तक जारी की थी कि कोई भी भाई इन पत्रोंको न पढ़े और न खरीदे। हालमें दि० जैन खंडेलवाल महाप्रसभाने भी इन पत्रोंके बहिष्कारका प्रस्ताव पास किया है। और भी कुछ लोकल सभाएँ, एक दूसरेकी देखादेखी, इस किसमके प्रस्ताव पास कर चुकी हैं।

परन्तु इन सब सभाओंकी आज्ञाओंको जैन पत्रोंके सम्पादक लोग नहीं मानते। वे प्रायः सभी इन पत्रोंको बराबर पढ़ा करते हैं, और इसलिए उन्हें इनका बहिष्कार स्वीकार नहीं है। कितने ही पत्र-सम्पादक इन पत्रोंके कुछ लेखोंपर टीका-टिप्पण भी किया करते हैं जिससे उनके पाठकोंका यह फर्ज (कर्तव्य) हो जाता है कि वे उन टीका-टिप्पणोंकी जाँचके लिए इन बहिष्कृत पत्रोंके लेखोंको भी देखें जिनपर टीका-टिप्पण किया गया है; और इसलिए उन्हें ऐसे (बहिष्कृत) पत्रोंके उन अंकोंको मँगाना पड़ता है, जिनमें वे विवादग्रस्त लेख होते हैं, और उन्हें पढ़ना पड़ता है। ऐसी हालतमें बहिष्कारका कुछ भी अर्थ नहीं रहता; सभी जैन-पत्रोंके विचारशील पाठकोंके पढ़नेमें ये (बहिष्कृत) पत्र आ जाते हैं।

नीचे हम कुछ ऐसे पत्रोंका परिचय अपने पाठकोंको कराते हैं जिनके सम्पादकोंको यह बहिष्कार स्वीकार नहीं है—

१ हिन्दी जैनगजट—इस पत्रके सम्पादक, पं० रघुनाथदासजी 'सत्योदय' के लेखोंपर बराबर अपने विचार लिखा करते हैं। हाल हीमें ३ जनवरीके अंकमें भी आपने 'ज्योतिषचक्र वा खगोल विद्या' शीर्षकके नीचे सत्योदयके एक लेख पर अपने विचार प्रकट किये हैं। जैनहितैषीपर भी आपकी कृपा बनी रहती है, पञ्चावती पुरवालके गतांक नं० ७ में आपने उसके दो नोटोंपर दो लेख प्रकाशित कराये हैं। जैनहितैषीके और भी कुछ लेखोंपर आपकी टिप्पणियाँ निकली हैं। इससे आप इन दोनोंको पढ़ते हैं और आपने इनका बहिष्कार नहीं किया, यह साफ जाहिर है। यह दूसरी बात है कि आप शब्दों द्वारा बहिष्कारका अनुमोदन

और समर्थन किया करते हैं लेकिन स्वयं आपका उसपर अमल नहीं है; और इसलिए आपके पाठकोंपर भी उसका कुछ असर नहीं हो सकता, वह केवल कहने सुनने हीकी बात रह जाती है ।

२ जैनमार्तण्ड—इस पत्रके सम्पादकने अपने गतांक नं० १२ में जैनहितैषीके 'विक्रीत देह' वाले नोटपर अपने विचार लिखे थे, जिससे मालूम होता है कि आप जैनहितैषीको पढ़ते हैं और जैनहितैषी आपके पास परिवर्तनमें जाता है । आपने उसका बहिष्कार नहीं किया ।

३ पद्मावतीपुरवाल—इसके सम्पादक महाशय भी जैनहितैषीको पढ़ते हैं और उसे अपने पत्रके परिवर्तनमें मँगाते हैं । हालके अपने अंक (नं० ८) में उन्होंने जैनहितैषीके गतांकमें प्रकाशित बाबू निहालकरणजी सेठीवाले लेखपर अपने कुछ विचार प्रकट किये हैं । इससे स्पष्ट है कि उन्होंने भी बहिष्कार नहीं किया ।

४ जैनसिद्धान्त—यह जैनशास्त्रपरिषद्का मुखपत्र है । इसके सम्पादक महाशय भी जैनहितैषीको पढ़ते हैं । उन्होंने अपने हालके अंकमें ही जैनहितैषी पर अपने विचार प्रकट किये हैं ।

५ जैनमित्र—इस पत्रके सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी जैनहितैषीको बराबर पढ़ते हैं । आपको बहिष्कार मान्य ही नहीं है, ऐसा आपने सेठ लालचन्दजी के व्याख्यानकी आलोचना करते हुए, जैनमित्रके गत २३ दिसम्बरके अंकमें सूचित किया है ।

६ जैसवाल जैन—इसके संपादक श्रीयुत महेन्द्र जीने कलकत्ता सभाकी कार्रवाईको अनुचित बतलाया था और जब बादको उसने जैनहितैषीका भी बाय-

काट किया तो उसकी बुद्धिकी व्यंगपूर्ण हँसी उड़ाई थी । इससे इस पत्रके संपादक महाशय उक्त बहिष्कारके विरोधी हैं और इन पत्रोंको बराबर पढ़ा करते हैं, यह स्पष्ट है । हालमें आपका एक पत्र भी जैनहितैषीकी प्रशंसामें हमारे पास आया है ।

७ जैनप्रदीप—इस पत्रके सम्पादक ला० ज्योतिप्रसादजी भी पत्रोंकी इस बहिष्कार-नीतिके बिलकुल विरुद्ध हैं और आप जैनहितैषी आदि सभी पत्रोंको विचार दृष्टिसे पढ़ा करते हैं ।

८ जैनहितेच्छु—इस पत्रके सम्पादक श्रीयुत वाडीलाल मोतीलालजी शाह जैनहितैषीको बराबर बड़े प्रेमके साथ पढ़ा करते हैं और आपने इस पत्रके सम्बन्धमें अपने गहरे विचार प्रकट किये हैं । इसी तरह आप सत्योदय आदिको भी पढ़ते हैं । (आपने २५०) रुपयेके इनामका एक नोटिस भी निकाला है जो उस लेखकको दिया जायगा जो कलकत्ता सभाकी कार्रवाईको न्यायपुरस्सर और जैनहितैषी आदि पत्रोंको 'अजैन' सिद्ध कर दे और जिसका लेख पाँच निष्पक्ष विद्वानोंकी कमेटीसे पास हो जाय । आपकी रायमें कलकत्ता सभाकी कार्रवाई बिलकुल अन्यायपूर्ण और नासमझीका परिणाम है और इसलिए आपने इस बातकी जाँचके लिए कमसे कम एक सालके लिए इन पत्रोंके ग्राहक होनेकी सबको प्रेरणा की है ।

इसी तरह और भी कितने ही जैनपत्र हैं जिनके सम्पादक इन बहिष्कृत पत्रोंको, खासकर जैनहितैषीको बराबर पढ़ते हैं । जब पत्र-सम्पादकोंको ही यह बहिष्कार स्वीकार नहीं है, जिनके हाथमें समाजकी बहुत कुछ बागडोर रहती है

और जो समाजके एक प्रकारके नेता होते हैं, तब फिर उनके पाठकोंको ही वह कैसे स्वीकार हो सकता है और वे कैसे उसको स्वीकार करनेके लिए बाध्य किये जा सकते हैं—कमसे कम टीका टिप्पण होनेपर उन्हें इन पत्रोंको देखना अवश्य चाहिए। यह नहीं हो सकता कि एक तरफ तो विचारनेके लिए कहा जाय और दूसरी तरफ विचारका दर्वाजा अथवा मार्ग बन्द कर दिया जाय। ऐसी हालतमें बहिष्कारका यह सब आयोजन बिलकुल थोथा और निःसार जान पड़ता है। यही वजह है कि पत्रसम्पादकों तथा दूसरे विद्वानोंने—कितने ही ऐसे विद्वानोंने भी जो बहिष्कारके प्रस्तावका अनुमोदन अथवा समर्थन कर चुके हैं—उसे ग्रहण नहीं किया। हमारे खयालमें जो लोग इस बहिष्कारके पक्षपाती हैं—उसका अनुमोदन और समर्थन करते हैं—उन्हें स्वयं अपने विषयमें प्रामाणिक होना चाहिए और तब दूसरोंको उसपर अमल करनेके लिए कहना चाहिए। अन्यथा खुले दिलसे इस घातक नीतिका विरोध करना चाहिए और सबको स्वतन्त्रताके साथ विचारने तथा समझनेका अवसर देना चाहिए।

५-प्राकृत भाषाको उत्तेजन ।

गत दिसम्बर मासमें स्याद्वाद महा-विद्यालय, काशीका वार्षिकोत्सव प्रो० ध्रुवके सभापतित्वमें सानन्द समाप्त हो गया। ध्रुव महाशयका व्याख्यान बहुत कुछ महत्वपूर्ण हुआ। इस अवसरपर हमारे मित्र श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी भी पधारे थे। आपका भी देरतक महत्वपूर्ण व्याख्यान हुआ और उसमें आपने विद्यार्थियोंको अनेक अच्छी और उपयोगी

८

शिक्षाएँ दीं। आपने विद्यार्थियोंको प्राकृत भाषा पढ़नेकी खास तौरसे प्रेरणा की और न केवल प्रेरणा ही की बल्कि १०१) रुपयेका पारितोषिक, अपनी दूकानकी ओरसे, उस विद्यार्थीको देना स्वीकार किया जो प्राकृत भाषा पढ़कर उसमें उत्तीर्णता प्राप्त करे। प्रेमीजीका यह कार्य निःसन्देह प्रशंसनीय है जो उन्होंने दिगम्बरोंमें प्राकृत भाषाके अध्ययनको इस तरहपर उत्तेजन देना प्रारम्भ किया है। दिगम्बर समाजमें प्राकृत भाषाका ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया है और उसके अधिकांश विद्वान् संस्कृत टीकाओंके सहारेसे ही प्राकृत ग्रन्थोंसे काम ले रहे हैं। इस-लिए समाजमें नियमानुसार प्राकृत भाषाकी शिक्षाकी बड़ी जरूरत है जिससे प्राकृतके मूल ग्रन्थोंका मूलपरसे ही अध्ययन करके उनका विशेष रसास्वादन हो सके। दिगम्बरोंको अपने श्वेताम्बर भाइयोंकी तरह इस विषयकी ओर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

६-ब्रह्मचारीजीकी जैनगजटके सम्पादकको सूचना ।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने, हिन्दी जैनगजटके किसी लेखको लक्ष्य करके उसके सम्पादकके नाम, जो सूचना जैन-मित्रके गतांक नं० ८ में, निकाली है वह इस प्रकार है :—

“यदि जैनगजटके सम्पादक यह चाहते हों कि कोई भी व्यक्ति जो विधवा विवाहकी तरफ हो उसे दि० जैनसमाजसे निकाल देना चाहिए तो उन्हें दिगम्बर जैनसमाजकी शुद्धि करनी पड़ेगी। सैत-वाल व चतुर्थ जातिमें व शायद पंचममें भी जिनकी संख्या दिगम्बरोंमें एक डेढ़ लाख होगी, विधवाविवाह कराते हैं तथा

दक्षिणके भट्टारक ऐसा करकेकी आज्ञा देते हैं। ये लोग प्रतिष्ठा भी करते व कराते हैं तथा मन्दिरोंमें यत्र तत्र प्रक्षाल-पूजन भी करते हैं। इन्हींमेंसे कुछ लोग महासभा व प्रान्तिक सभाके सभासद भी होंगे, परन्तु ऐसा ऊधम करनेसे दि० जैनसमाजमें बड़ी खलबली पैदा होगी। इसमें सन्देह नहीं कि सम्पादकको इस प्रथाका विरोध करना चाहिए व उपदेश देकर इन सबको भी रोकना चाहिए तथा अन्धोंके भावोंको भी बदलना चाहिए। परन्तु कोई भी सम्बन्ध ऐसे विचार-वालोंसे न रखना वर्तमान स्थितिको देखते हुए बुद्धिमानी न होगी। और अनैक्य बढ़ाने प्रत्युत् विधवाविवाहके पक्षको मजबूत करनेमें कारणीभूत पड़ेगी। सम्पादकको सोच समझकर लिखना चाहिए।”

सूचना यद्यपि बहुत कुछ ठीक है, परन्तु जहाँतक हम समझते हैं, ऐसी सूचनाओंके निकालने अथवा बातोंके लिखनेसे ही ब्रह्मचारीजीपर व्यक्तिगत आक्षेप होते हैं, जिनकी वे अपने पत्रमें खास तौरसे शिकायत करते हैं। इसलिए यदि वे उन आक्षेपोंसे बचना चाहते हैं तो, हम उन्हें यही सलाह देंगे कि वे इस प्रकारके लेख न निकाला करें; बल्कि ऐसे आक्षेपकारियोंकी पूरी तौरसे हमें हाँ ही मिलाया करें जिससे फिर उन्हें व्यक्तिगत आक्षेपोंके लिए जरा भी चिन्ता न करनी पड़े। भला जिस विधवाविवाहके विरुद्ध इतना आन्दोलन हो रहा है और जिसपर प्रकाश डालनेवाले कुछ लेखोंको प्रकाशित करनेके अपराधमें ही कतिपय पत्रोंका, वास्तवमें, बहिष्कार किया गया है, उसीके तरफदारोंके साथ सम्बन्ध रखनेकी आप सलाह देते हैं, यह कैसे सहन हो सकता है? और कैसे आपकी

ये सब बातें मानी जा सकती हैं? जरूर आपपर आक्षेप होंगे। आपको तो उनसे बचनेके लिए यही कहना चाहिए था कि, ऐसे लोगोंको जैनी ही न समझा जाय और न उनसे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध रक्खा जाय! बल्कि, वश चले तो, उन्हें देशसे भी निकाल दिया जाय! ऐसा करनेपर रघुनाथदासजी जैसे पंडित-जन जरूर आपपर प्रसन्न होते और आपका बहुत कुछ यशोगान करते। आशा है, ब्रह्मचारीजी आगेसे इस नेक सलाहपर जरूर ध्यान रखेंगे। और यदि उन्हें ऐसे परिडतोंका आराधन इष्ट होगा तो वे जरूर उसपर अमल करेंगे। अन्यथा, अपने अन्तःकरणकी आवाजके अनुकूल स्पष्टवादी होना उनका खास धर्म है, जिसके पालनमें उन्हें सदा सावधान रहना चाहिए।

७—क्या मैं पत्र-सम्पादक हो सकूँगा।

परलोकगत मि० डब्ल्यू टी० स्टेडका नाम पत्र-सम्पादकोंमें विशेष उल्लेख योग्य है। आप सम्पादन-कलाके आचार्य माने जाते हैं। आपका प्रभाव इतना बढ़ा चढ़ा था कि बड़े बड़े राजा भी आपसे परामर्श लिया करते थे।

एक समय, लगभग ३० वर्ष पूर्व, “टाइम्स” के वर्तमान प्रधान सम्पादक मि० विकहम स्टेडने उनसे पूछा कि मैं सम्पादक हो सकूँगा या नहीं। इसके उत्तरमें मि० डब्ल्यू० टी० स्टेडने जो कुछ कहा वह “आज” के शब्दोंमें इस प्रकार है—

“सम्पादक, मैं क्या जानूँ, आप सम्पादक होनेके योग्य हैं वा नहीं? इसके जाननेका एक ही उपाय है। यदि आप वास्तवमें कुछ कहना चाहते हैं तो उसे लिखिए

और किसी सम्पादकके पास भेज दीजिए। सम्भवतः वे उसे लौटा देंगे। केवल शब्दालङ्कारके लिए समय नष्ट न कीजिए। जो कहना हो बिना आडम्बरके उसे कह डालिए। जब लेख समाप्त हो जाय तब कल्पना कीजिए कि आपको अपने खर्चसे उसे तारद्वारा आस्ट्रेलिया भेजना है, एक एक अनावश्यक शब्द चुन चुनकर निकाल बाहर कीजिए और विशेषतः विशेषणोंका बहिष्कार कीजिए। इसके बाद यदि कुछ रह जाय तो किसी सम्पादकके पास भेजिए और देखिए, क्या होता है। यदि असफल हों तो बार बार प्रयत्न कीजिए, जबतक आप विशेष कहना न चाहते हों तबतक असफलता रक्खी हुई है। इस प्रकार प्रयत्न करनेके बाद आप जान सकेंगे कि आप सम्पादक होनेके योग्य हैं वा नहीं।”

हमारे देशके होनहार लेखकोंको भी इसका मनन करना चाहिए। इससे वर्तमान सम्पादकोंके अनेक कष्ट कट जायेंगे, लेखकोंको बहुत कम हताश होना पड़ेगा तथा हिन्दीमें भी अच्छे सम्पादक उत्पन्न होंगे। (श्रीशारदा)

बात बहुत ठीक है। जैनसमाजके लेखकोंको ही नहीं बल्कि कितने ही पत्र-सम्पादकोंको भी इसपर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

द-हृदय-हीनता और अनुभव-शून्यता ।

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके मन्त्री श्री-युत परिडत नाथूरामजी प्रेमीके कार्यकी प्रशंसा और उनके इस्तीफेका उल्लेख करते हुए, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने, अपने गत छठी जनवरीके जैनमित्रमें जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है,—

“माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाने १६ अपूर्व रत्न प्रकाशित करके प्राचीन दिग्ग्वर जैनसाहित्यका जो उद्धार किया है उसके लिये वह कमेटी तथा खासकर वह मन्त्री जिनके उद्योगसे लुप्तप्राय ग्रन्थ जैसे नयचक्र, युक्त्यनुशासन, आराधनासार, पात्रकेसरीस्तोत्र, तत्वानुशासन, अन्गार-धर्माभूत आदि प्रकट, हुए, जैन-समाजकी ओरसे धन्यवादके पात्र हैं। नाथूरामजी प्रेमीने मन्त्रीका काम बड़ी सच्चाईके साथ किया है। उनके कामको देखकर तथा यह विश्वास करके कि उनके उद्योगसे बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा, हमने १००००) रूपए-का फण्ड समाजसे एकत्र किया। आज मन्त्रीजीका इस्तीफा पाकर हमारे चित्तको बहुत दुःख हुआ। इस्तीफा देनेका कारण केवल यही है कि हिन्दी जैनगजटके सम्पादक उनके हाथसे काम निकालना चाहते हैं। उनको यह भ्रम है कि कहीं वे अपना विधवा-विवाह-पोषक मत किसी ग्रन्थमें न रख दें। इसीसे उदात्त होकर मन्त्रीजी काम छोड़ रहे हैं। हम नाथूरामजीसे कहेंगे कि आपको ऐसे लेखोंसे घबराना नहीं चाहिए। जैन-समाजमें गालियाँ सहकर भी काम करना चाहिए। हिन्दी जैनगजटने जो ग्रन्थमालाकी कमेटीको लिखनेके पहले बिना सोचे समझे ऐसा मत प्रकट कर दिया सो एक महत्वके कार्यमें अन्तराय डालनेका काम किया है। भले ही नाथूरामजीके कैसे ही विचार हों पर उनपर ऐसा दोष तब ही लगाया जा सकता था जब उनके द्वारा किसी भी ग्रन्थमें ऐसा कहा (किया) गया हो। दूसरे, यह बात नाथूरामजीसे सम्भव ही नहीं है क्योंकि वे संस्कृत प्राकृत ऐसी नहीं जानते कि किसी ग्रन्थमें परिवर्तन कर सकें। तीसरे, ग्रन्थोंको

प्रेसके लिए लिखने व प्रूफ संशोधनका काम जैनशास्त्रीगण करते रहते हैं। पहले परिणित मनोहरलालजी यह कार्य करते थे; अब पं० पन्नालालजी सोनी कर रहे हैं। यदि ये शास्त्री अनुचित विचार रखते होते तो आपको लिखना था कि इनको बदलकर अमुकको रख दो। सम्पादकोंको बहुत समझकर कलम उठानी चाहिए व लेख प्रसिद्ध करना चाहिए। जैनसमाजमें इने गिने काम करनेवाले हैं। यदि हम इनसे काम लेना बन्द करेंगे तो फिर सब ही काम बन्द हो जायँगे। भाई नाथूरामजी व ग्रन्थमाला कमेटीको जैनगजटके लिखनेका खयाल छोड़कर अपने दि० जैन साहित्यके उद्धारमें डटे रहना चाहिए।”

हमें ब्रह्मचारीजीके इस नोटसे श्रीयुत भाई नाथूरामजी प्रेमीके इस्तीफेका हाल और उसका कारण मालूम करके हिन्दी जैनगजटके सम्पादककी बुद्धिपर बहुत ज्यादा अफसोस और खेद हुआ। ब्रह्मचारीजीने उसपर जो कुछ नोट किया है उससे हम प्रायः सहमत हैं; परन्तु उनकी यह बात माननेके लिए बिलकुल तैयार नहीं हैं कि, प्रेमीजीसे ग्रन्थोंमें परिवर्तन होना इस वजहसे सम्भव नहीं है कि वे संस्कृत प्राकृत इतनी नहीं जानते कि परिवर्तन कर सकें। यह बात बिलकुल बच्चोंको बहकाने जैसी है। हमारा कहना यह है प्रेमीजी योग्यताकी दृष्टिसे—संस्कृत प्राकृतके ज्ञानकी दृष्टिसे—सब कुछ परिवर्तन कर सकते हैं; परन्तु उनके आत्मामें जितना धार्मिक बल मौजूद है, जिस नैतिक चरित्रके वे व्यक्ति हैं और उनके अन्दर जितना मनुष्यत्व तथा सत्यनिष्ठाका भाव पाया जाता है उसकी दृष्टिसे उनके द्वारा ऐसी कूट-लेखकताका कार्य होना नितान्त असम्भव है और कभी

नहीं बन सकता। जो लोग उनपर सन्देह करते हैं वे, निःसन्देह, हृदयहीन और अनुभव-शून्य हैं, उन्होंने अभी तक प्रेमीजीको नहीं पहचाना। नहीं मालूम, हिन्दी जैनगजटके सम्पादककी यह हृदयहीनता और अनुभव-शून्यता समाजको क्या क्या हानि पहुँचावेगी। उन्हें इतनी भी समझ बूझ न हुई कि ग्रन्थमालामें जो ग्रन्थ निकलते हैं उन्हें यदि वे स्वयं नहीं पढ़ सकते तो दूसरे कितने विद्वान् पढ़ते हैं और कितने खोजी विद्वान् मूल ग्रन्थोंकी अनेक प्रतियों परसे उनकी जाँच किया करते हैं; कोई कुल्हियामें गुड़ नहीं फूटता, वे पबलिकके सामने विचार और जाँचके लिए रखे जाते हैं। ऐसी हालतमें कोई खास गोलमाल कैसे चल सकता है और किस सहृदय व्यक्तिको उसके करनेकी जुरअत हो सकती है।

६-गांधी सिगरेट ।

किसी कारखानेने अपने सिगरेटके पैकटोंके ऊपर महात्मा गांधीका चित्र छापकर उसका नाम “महात्मा गांधी सिगरेट” रक्खा है। इसपर गांधीजीने जो कुछ लिखा है वह “भविष्य” के शब्दोंमें इस प्रकार है—“इससे अधिक जिज्ञातकी बात और कोई नहीं मालूम होती कि सिगरेटके साथ मेरे नामका संयोग किया जाय। मैं सिगरेट पीनेसे उतनी ही घृणा करता हूँ जितनी शराब पीनेसे। तम्बाकू पीना मैं बुरा समझता हूँ। इससे आदमीका अन्तःकरण मुरदा हो जाता है। और वह शराब पीनेसे भी इस मानेमें बुरा है कि इसका प्रभाव चुपचाप पड़ता है।

यह एक ऐसी बुरी आदत है कि जहाँ इसने एक दफा आदमीपर अपना कब्जा कर लिया कि फिर इससे छूटना मुश्किल हो

जाता है। इसमें खर्च भी बहुत होता है। इससे साँसमें बदबू आने लगती है, दाँत मैले हो जाते हैं और कैसरे (कीड़े) पैदा हो जाते हैं। यह एक बड़ी गन्दी आदत है। किसी आदमीको यह अधिकार नहीं है कि सिगरेटके साथ मेरे नामका संयोग करे। मैं उस अज्ञात कारखानेको धन्यवाद दूँगा यदि वह बाज़ारोंसे इस किसके सिगरेट हटा ले, अन्यथा जनता ऐसे सिगरेटोंका प्रयोग करना छोड़ देगी।”

महात्मा गांधी जैसे पूज्य और पवित्र नामके साथ सिगरेट जैसी अपवित्र और हानिकर वस्तुका नाम जोड़ना और साथ ही उनका चित्र भी उसके पैकटोंपर छापना, निःसन्देह, बड़ी ही धृष्टताका कार्य है। जो लोग महात्मा गान्धीका मान करते हैं उन्हें चाहिए कि वे ऐसे सिगरेटोंका कदापि व्यवहार न करें। बल्कि, बन सके तो उन्हें तम्बाकू पीना भी छोड़ देना चाहिए जिसे महात्माजी इतना बुरा समझते हैं।

१०-देशसेवा और जैन परिडत ।

देशसेवाके कामोंमें भाग लेनेके लिए कुछ असेंसे 'जैन पोलिटिकल कॉन्फ्रेंस' नामकी एक सभा स्थापित है। गत दिसम्बर मासमें कांग्रेसके अवसरपर, नागपुरमें, इसका चतुर्थ अधिवेशन सेठ पद्मराजजी रानीवालोकें सभापतित्वमें सानन्द हो गया। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, अपने पत्रमें इस अधिवेशनका कुछ विवरण देते हुए, इस बातपर दुःख प्रकाशित करते हैं कि सभामें परिडत लोग और उनके अनुयायी दूसरे सेठ आदिक नहीं आये, जिन सबमें देशसेवाका भाव जागृत करनेके लिए यह सब प्रयत्न किया गया था; और उसका कारण यह बतलाते हैं

कि—“एक दफे परिडत धन्नालालजी (इस सभाका) विरोध कर चुके थे, इसलिए उन्हें अपनी बात रखनेको फिर भी विरोध करनेके लिए पं० देवकीनन्दनजीको भेजना पड़ा जिन्होंने इस प्रान्तमें आने जानेवाले मुखिया सेठ चैनसुख छावड़ा तथा सिंहई कुँवरसेन सिवनीको अपनी सम्मतिमें गाँठकर सर्व अन्य मण्डलीको सभामें आनेसे रोका।” इसके बाद आप जैनियोंमें देशसेवाके भावको जागृत करनेके लिए इस सभाकी बहुत बड़ी आवश्यकता बतलाते, उपयोगिता दर्शाते और सभाके उद्देश्यों तथा अधिवेशनके कार्योंकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि—“ऐसी दशामें भी विरोध करना व शामिल न होना इस कार्रवाईसे जैनजातिको देशसेवासे दूर ले जानेका दोष सम्पादन करना है।” और अन्तमें ब्रह्मचारीजीने पं० धन्नालालजी और उनके अनुयायियोंको ऐसी सभाओंमें शामिल होकर देशसेवाके कामोंमें भाग लेनेकी अनेक प्रकारसे प्रेरणा की है। परन्तु हमारी रायमें ब्रह्मचारीजी ऐसे दक्षिणानूसी खयालके जैन परिडतोंके साथ देशसेवाकी बातें करते हुए भूलते हैं। शायद उन्हें इस बातका खयाल नहीं है कि भारतवर्षमें तैंतीस करोड़ मनुष्योंका वास है और उनमें ये परिडत लोग ज्यादासे ज्यादा तीन चार लाख दिगम्बर जैनियोंको ही सम्यग्दृष्टि मान सकते हैं, देशके बाकी सब लोग उनकी समझमें मिथ्यादृष्टि हैं। तब, देशकी सेवा करना मिथ्यादृष्टियोंकी सेवा करना है और मिथ्यादृष्टियोंकी सेवासे मिथ्यात्वके अनुमोदन तथा अभिनन्दनका दोष लगता है जो उन्हें कभी इष्ट नहीं हो सकता! फिर भला आपकी देशसेवाकी बातको ये पुराने दक्षिणानूसी खयालके

पंडित लोग कैसे मान सकते हैं ? आप उन्हें दिगम्बर जैनियोंकी ही सेवाका कुछ उपदेश दीजिए, शायद वे उसे मान जायँ ! परन्तु आजकल तो वे असहयोगमें आ रहे हैं और महात्मा गांधीके असहयोगसे भी उनके असहयोगका नम्बर बढ़ा हुआ है ! महात्मा गांधी तो सरकारसे ही असहयोग करनेको कहते हैं और आपसमें सहयोगकी यहाँतक उत्तेजना दे रहे हैं कि अन्त्यजों और अछूतोंके साथ भी सहयोग करना सिखलाते हैं और उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखनेका निषेध करते हैं । परन्तु जैन पंडित आपसमें भी असहयोगकी शिक्षा दे रहे हैं ! वे अपने जातीय भाइयों और जातीय पत्रोंका बहिष्कार कर रहे हैं । इतना ही नहीं, बल्कि यदि कोई भाई जाति और धर्मकी सेवाका कोई काम कर रहा हो—जैसे कि ऐतिहासिक काम या दुष्प्राप्य और अलभ्य जैन ग्रन्थोंकी खोज जैसा निर्दोष काम—तो ये लोग उसमें भी सहायता देना पसन्द नहीं करते ! यही वजह है कि ऐसे किसी पंडितने जैनहितैषीको उसके इन कामोंमें बहुत कुछ प्रार्थना और प्रेरणा करनेपर भी कोई सहायता नहीं दी । इससे आप समझ सकते हैं कि ये लोग अपने वर्तमान अनुदार विचारोंकी हालतमें देशसेवा तो क्या, अपने दिगम्बर भाइयोंकी सेवाके लिए भी कहाँतक प्रस्तुत हो सकते हैं ।

हाँ, एक बात और भी ध्यानमें रखिये । वह यह कि 'सेवा' शब्द तो बहुत बड़ा है । वह तो अपने पूज्योंके लिए ही व्यवहृत किया जाता है, जैसे देवकी सेवा और गुरुकी सेवा । सम्यग्दृष्टि तो अपने मिथ्यादृष्टि मातापिताओंकी भी सेवा नहीं किया करता (?), उनपर करुणा अथवा दया करके कुछ काम जरूर कर

देता है । जिनकी ऐसी विलक्षण भावनाएँ हों उन्हें देशसेवाके लिए प्रेरित करके आप कहाँतक सफल हो सकेंगे, इसे खुद सोच लीजिए । आप उन्हें देशसेवाकी जगह 'देशकी करुणा' अथवा 'देशपर दया' करनेके लिए कहिए । शायद वे इन शब्दोंके कारण ही आपकी कुछ बात सुन लें और देशके कामोंमें कुछ योग देने लगें । परन्तु हमें तो उनसे ऐसी कुछ भी आशा नहीं है । देश चाहे रसातलको चला जाय—गुलामोंसे भी परे गुलाम बन जाय, जैनजाति अपने सर्वाधिकारोंसे वञ्चित हो जाय और चाहे देशभरकी सहानुभूति खो बैठे; परन्तु इससे उन्हें क्या ? वे तो धर्मके ठेकेदार बने बैठे हैं, उनकी उस ठेकेदारीमें फरक न आना चाहिए ! *

११-चलते फिरते मकान ।

जबलपुरकी 'हितकारिणी' सूचित करती है कि 'इङ्गलैंडमें एक बड़ी इमारत एक स्थानसे दूसरे स्थानको डठाकर भेज दी गई है । यह इमारत ६० फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी है; लकड़ी, मिट्टी और चूनेके मेलसे बनी है और उसका वजन १५० टन है । इमारत जमीनपर नहीं किन्तु लोहेके दासेपर, जिसमें चक्र लगे हुए थे, खड़ीकी गई थी । इसमें एक दफ्तर है जिसका काम इमारतको खींचकर ले जाते समय बराबर जारी रहा और उसमें टेलीफोन भी वैसे ही लगा रहा ।' अभीतक मकानात स्थावर

*समाजमें कितने ही पण्डित ऐसे हैं जिनसे यह नोट प्रायः सम्बन्ध नहीं रखता, न उनके वैसे दकियानूसी विचार हैं जिनका इस नोटमें इशारा है । इसलिए उन्हें इसपरसे जरा भी असन्तुष्ट होनेकी जरूरत नहीं है ।

—सम्पादक ।

सम्पत्तिमें समझे जाते थे; परन्तु अब इस प्रकारके चलते फिरते मकानोंके आविष्कारसे वे जंगम सम्पत्तिमें भी परिगणित होने लगेंगे !

१२-सूत कातनेका कर्तव्य ।

[लेखक—महात्मा गान्धी ।]

(“यंग इंडिया”)

“स्वराज्यकी कुञ्जी” शीर्षक लेखमें मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि घर घर सूत कातनेका प्रचार करनेसे देशका कितना बड़ा लाभ है। भविष्यत्के किसी भी शिक्षाक्रममें, सूत कातना एक आवश्यक विषय होना चाहिए। जैसे हम लोग बिना साँस लिये, बिना भोजन किये जी नहीं सकते, वैसे ही घरमें सूत कातनेकी प्रथाका जीर्णोद्धार किये बिना हमारा आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करना और इस प्राचीन भूमिसे दरिद्रताको भगा देना असम्भव है। मेरा यह मत है कि प्रत्येक घरके लिए चरखा उतना ही आवश्यक है जितना कि रसोईघरमें चूल्हा। इसके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है जिससे इस देशकी दिन दिन बढ़ती हुई दरिद्रताका प्रश्न हल हो सके।

तब घर घरमें चरखेका प्रवेश कैसे हो ? मैंने तो पहलेसे ही कह रखा है कि प्रत्येक राष्ट्रीय विद्यालयमें चरखा चलाना और सूत निकालना सिखाया जाना चाहिए। जहाँ एक बार हमारे लड़के-लड़कियोंने यह कला सीख ली तहाँ वे उसे आसानीसे अपने घर ले जा सकते हैं।

पर इसके लिए संगठनकी आवश्यकता है। चरखा प्रति दिन १२ घण्टे चलाना चाहिए। अभ्यस्त मनुष्य एक घण्टेमें ढाई तोला सूत कात सकता है।

इस समय इस सूतका जो दाम मिलता है वह औसत हिसाबसे ४० तोले या आधा सेर सूतके पीछे चार आना है, अर्थात् एक घण्टेका एक पैसा पड़ा। इसलिए हर चरखेसे रोज तीन आना मिलना चाहिए। मजबूत चरखा ७ रुपये में मिलता है। इस तरह १२ घण्टे रोज काम करनेसे ३८ दिनसे कम ही समयमें इसका दाम निकल आता है। इस हिसाबको ध्यानमें रखकर कोई भी अपने कामका हिसाब बैठा सकता है। इस हिसाब पर कोई हिसाब लगाता जाय तो परिणाम देखकर उसके आश्चर्यका पारावार न रहेगा।

यदि प्रत्येक स्कूलमें सूत कातना सिखलाया जाय तो शिक्षाका व्यय चलानेके सम्बन्धमें आज जो हमारे विचार हैं, वे एकदम बदल जायँ। हम दिनमें छः घण्टेका स्कूल रख सकते हैं और लड़कोंको मुक्त शिक्षा दे सकते हैं। मान लीजिए कि एक लड़का नित्य प्रति ४ घण्टे चरखा चलाता है तो वह रोज १० तोले सूत निकालेगा और इस तरह स्कूलके लिए वह रोज एक आना कमावेगा। मान लीजिए कि पहले महीनेमें उससे काफी सूत न निकला और २६ दिनका स्कूल रहा। पहले महीनेके बादसे वह १॥=) महीना कमा लेगा। इसी हिसाबसे जिस श्रेणीमें ३० बालक हैं उस श्रेणीको पहले महीनेके बादसे ४८॥) महीनेकी आमदनी हो जायगी।

मैंने साहित्यकी शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है। यह शिक्षा ६ घंटोंमेंसे बाकीके दो घण्टोंमें दी जा सकेगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हर एक स्कूल बिना विशेष परिश्रमके अपना खर्च आप चला सकता है और देश

अपने स्कूलोंके लिए अनुभवी अध्यापक पा सकता है ।

इस स्कीमको अमलमें लानेमें बड़ी भारी कठिनाई चरखेकी है । यदि इस कलाको लोग पसन्द कर लें तो हमें हजारों चरखोंकी जरूरत होगी । सौभाग्यका विषय है कि हर गाँवका बढ़ई आसानीसे यह यन्त्र तैयार कर सकता है । आश्रमसे या और कहीं चरखा मँगाना बड़ी भारी भूल है । सूत कातनेकी कलामें यह खूबी है कि यह बिलकुल

सीधासादा काम है, लोग इसे जल्दी सीख सकते हैं और हर गाँवमें विशेष व्यय किये बिना इसका प्रचार कर सकते हैं ।

यह शिक्षाक्रम मैंने केवल इसी शुद्धि और उम्मेदवारीके वर्षके लिए ही सूचित किया है । जब फिरसे सब ठीकठाक हो जायगा और स्वराज्यकी स्थापना हो लेगी तब सूत कातनेका काम केवल १ घण्टा कर सकते हैं और बाकी समय साहित्यकी शिक्षामें लगा सकते हैं ।

(भारतमित्र)

भारतके प्राचीन राजवंश ।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ । इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यवसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते । बहुतांके विषयमें हमने तो भूठी, ऊटपटांग किम्बदन्तियाँ सुन रखी हैं और बहुतांको हम भूल ही गये हैं । इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पाल-वंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखाओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है । शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थ-प्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परिश्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है । प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए । इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है । लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है । मूल्य ३) ६० । आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे ।

नकली और असली धर्मात्मा ।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास । ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है । मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र ।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ६२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है । पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए । मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिए । साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें ।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग । इसमें कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है । अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं । मूल्य १=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग ।

यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है । इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सँकड़ों बातें लिखी गई हैं । इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं । मूल्य १)

३ दर्शनम्भार ।

आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना । इतिहासका एक महत्वका ग्रन्थ है । इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुर-संघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है । बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है ।

आत्मानुशासन ।

भगवान् गुणभद्राचार्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनीके स्वाध्याय करने योग्य है । इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है । बहुत ही सुन्दर रचना है । आजकल-

की शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्याय-शास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी टीका लिखवाई है और मूलसहित छपाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

युक्त्यनुशासन सटीक ।

माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमालाका १५ वाँ ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया। इसके मूलकर्ता भगवान् समन्तभद्र और संस्कृत टीकाके कर्ता आचार्य विद्यानन्दि हैं। यह भी देवागमकी भाँति स्तुत्यात्मक है और युक्तियोंका भाण्डार है। अभी तक यह ग्रन्थ दुर्लभ था। प्रत्येक भाण्डारमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए मू० ॥३॥

नियमसार ।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समय-सार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतछाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य -) दो ६० ।

नयचक्र संग्रह ।

यह उक्त ग्रन्थमालाका १६ वाँ ग्रन्थ है। इसमें देवसेनसूरिकृत प्राकृत नयचक्र (संस्कृतछायासहित) और आलाप पद्धति तथा माइल धवलकृत द्रव्यस्वभावप्रकाश (छायासहित) ये तीन ग्रन्थ छपे हैं। भूमिका पढ़ने योग्य है। तैयार हो गया। मूल्य ॥३॥

पार्श्वपुराण भाषा ।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियों-

के कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) ६० ।

कथामें जैनसिद्धान्त ।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमिति भवप्रपञ्चाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ॥३॥ और द्वितीय भागका ॥१॥ जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ ।

- १ जीवन्धर चम्पू-कवि हरिचन्द्रकृत। १।)
- २ गद्यचिन्तामणि-वादीभसिंहकृत। २।)
- ३ जीवन्धरचरित-गुणभद्राचार्यकृत। १।)
- ४ क्षत्रचूडामणि-वादीभसिंहकृत। मू० १।)
- ५ यशोधरचरित-वादिराजकृत। मू० ॥३॥

चरचा समाधान । पं० भूधरमिश्र कृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥१॥

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव बम्बई ।

बम्बईका माल ।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल, ताँबा, दवा-इयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइये। माल दस जगह जाँचकर बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है। चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिए। एक बार व्यवहार करके देखिये।

नन्हेलाल हेमचंद जैन,

कमीशन एजेण्ट,

चन्दाबाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई ।